तावन्मध्याह्नवेलायां अर्धफालकसंघकः।
भिक्षानिमित्तमायातो भूपतेरस्य मन्दिरम्॥ ७२॥

दृष्ट्वार्धफालकं सङ्घं कौतुकव्याप्तमानसः।
महादेवीमिमां प्राह महीपालपुरस्सरम्॥ ७३॥

अर्धफालकसंघस्ते महादेवि न शोभनः।
न चायं वस्त्रसंवीतो न नग्नः सविडम्बनः॥ ७४॥

ततोऽन्यस्मिन् दिने जाते चार्धफालकसंघकः।
नगरान्तिकमायातः कौतुकार्थं कलस्वनः॥ ७५॥

दृष्ट्वाऽमुं भूपतिः सङ्घं बभाण वचसा हि सः।
हित्वा तान्यर्धफालानि निर्ग्रन्थत्वं त्वमाश्रय॥ ७६॥

यदा निर्ग्रन्थता नेष्टा नृपवाक्येन तैरिमे।
तदा महीभृता प्रोक्ता भूयोऽप्याश्चर्यमीयुषा॥ ७७॥

यदि निर्ग्रन्थतारूपं ग्रहीतुं नैव शक्नुथ।
ततोऽर्धफालकं हित्वा स्वविडम्बनकारणम्॥ ७८॥

ऋजुवस्त्रेण चाच्छाद्य स्वशरीरं तपस्विनः।
तिष्ठत प्रीतचेतस्का मद्वाक्येन महीतले॥ ७९॥

लाटानां प्रीतिचित्तानां ततस्तद्दिवसं प्रति।
बभूव काम्बलं तीर्थं वप्रवादनृपाज्ञया॥ ८०॥

ततः कम्बलिकातीर्थान्नूनं सावलिपत्तने।
दक्षिणापथदेशस्थे जातो यापनसङ्घकः॥ ८१॥

भद्रबाहुकथानक।

७

देवसेनकृत भावसंग्रह (प्राकृत) की भद्रबाहुकथा (९३३-९५५ ई०)

उज्जयिनी में भद्रबाहु स्वामी ने निमित्तज्ञान से द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष की भविष्यवाणी की और सभी गणधरों को अपने-अपने संघों के साथ सुभिक्षवाले देश में चले जाने की आज्ञा दी। 'शान्ति' नामक आचार्य अपने संघ के साथ सौराष्ट्र देश के वलभीनगर गये। वहाँ भी बड़ा भारी अकाल पड़ गया। भूखे लोग दूसरों का पेट फाड़कर अन्न खाने लगे। इसलिए उदरपूर्ति में कठिनाई देखकर सुविधापूर्वक भोजन पाने के लिए उन्होंने निर्ग्रन्थ रूप का परित्याग कर दिया और कम्बल, दण्ड, भिक्षापात्र, प्रावरण

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तथा सफेद वस्त्र धारण कर लिए और दीनतापूर्वक अन्न की याचना कर वसतिका में लाकर खाने लगे। ऐसा करते-करते बहुत दिन बीत गए। जब सुभिक्ष हुआ, तब शान्त्याचार्य ने कहा कि अब इस कुत्सित आचरण को छोड़ दो और अपनी निन्दा-गर्हा करके फिर से मुनियों का श्रेष्ठ आचरण ग्रहण करो।

इन वचनों को सुनकर उनके प्रधान शिष्य जिनचन्द्र ने कहा कि अब उस दुर्धर आचरण को कौन धारण कर सकता है? इस समय हम जो आचरण कर रहे हैं, वह बहुत सुखदायक है। उसे हम छोड़ नहीं सकते। तब शान्त्याचार्य ने उनके आचरण को निन्दनीय बतलाकर श्रेष्ठ जिनमार्ग को ग्रहण करने का पुनः आग्रह किया। इससे जिनचन्द्र बहुत रुष्ट हो गया। उसने सिर पर दण्डप्रहार करके गुरु को मार डाला तथा संघ का स्वामी बन गया। वह लोगों को उपदेश देने लगा कि सग्रन्थलिंग से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसने शास्त्र भी उसी के अनुरूप रच दिये।[५] इस प्रकार विक्रम संवत् १३६ में वलभीनगर में श्वेताम्बरसंघ उत्पन्न हुआ।[६]

इन्हीं देवसेन[७] ने 'दर्शनसार' नामक ग्रन्थ में लिखा है—"विक्रम राजा की मृत्यु के १३६ वर्ष बाद सौराष्ट्र देश के वलभीपुर में श्वेतपट (श्वेताम्बर) संघ उत्पन्न हुआ। श्री भद्रबाहुगणी के शिष्य 'शान्ति' नाम के आचार्य थे। उनका 'जिनचन्द्र' नाम का एक शिथिलाचारी दुष्ट शिष्य था। उसने यह मत चलाया कि स्त्रियों को उसी भव में मोक्ष प्राप्त हो सकता है। केवलज्ञानी भोजन करते हैं और उन्हें रोग होना सम्भव है। वस्त्रधारी भी मुनि मोक्ष प्राप्त कर सकता है। महावीर का गर्भपरिवर्तन हुआ था। जिनलिंग के सिवाय अन्य लिंग से भी मुक्ति हो सकती है तथा प्रासुक भोजन सर्वत्र किया जा सकता है।"[८]

---

५. देवसेन : भावसंग्रह (प्राकृत) / गा.५२-७५ (दर्शनसार / पृ.५५-५७ / सम्पादक : नाथूराम प्रेमी)।

६. छत्तीसे वरिस सए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे उप्पण्णो सेवडसंघो हु बलहीए॥ ५२॥ भावसंग्रह।

७. भावसंग्रह (प्राकृत) और 'दर्शनसार', दोनों के कर्त्ता देवसेन एक ही व्यक्ति माने गये हैं। (तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा / खण्ड २ / पृ. ३७०)।

८. एक्कस्सए छत्तीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।
सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो॥ ११॥
सिरिभद्दबाहुगणिणो सीसो णामेण संति आइरिओ।
तस्स य सीसो दुट्ठो जिणचंदो मंदचारित्तो॥ १२॥
तेण कियं मयमेयं इत्थीणं अत्थि तब्भवे मोक्खो।
केवलणाणीण पुण अण्णक्खाणं तहा रोगो॥ १३॥
अंबरसहिओ वि जइ सिज्झइ, वीरस्स गब्भचारत्तं।
परलिंगे विय मुत्ती फासुयभोज्जं च सव्वत्थ ॥ १४॥ दर्शनसार

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

८

रत्ननन्दिकृत भद्रबाहुचरित (१६वीं शती ई०)

उज्जयिनी नगरी में चन्द्रगुप्त नाम का राजा राज्य करता था। वहाँ अनेक देशों से विहार करते हुए आचार्य भद्रबाहु बारह हजार मुनियों के साथ आये और नगर के बाहर उपवन में ठहरे। चन्द्रगुप्त ने उनसे मुनिदीक्षा ग्रहण की। एक दिन आचार्य भद्रबाहु श्रेष्ठी जिनदास के यहाँ आहारदान के लिए पड़गाहे गये। जब वे घर में प्रविष्ट हुए , तो उन्होंने पालने में एक साठ दिन के शिशु को देखा। वह मुनिराज से बोला—'जाओ, जाओ।' भद्रबाहु ने पूछा—'कितने वर्षों तक?' शिशु ने उत्तर दिया—'बारह वर्षों तक।'

तब भद्रबाहु ने निमित्तज्ञान से जाना कि मालवदेश में बारह वर्ष का अकाल पड़नेवाला है। मुनिराज आहार किये बिना लौट आये और बारह हजार साधुओं के साथ दक्षिण की ओर रवाना हो गये। किन्तु रामल्य, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र आदि मुनि गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कर उज्जैन में ही रुक गये।

दक्षिण की ओर विहार करते समय भद्रबाहु एक अटवी में पहुँचे। वहाँ अपनी मृत्यु का समय निकट जानकर एक कन्दरा में रुक गये। नवदीक्षित चन्द्रगुप्त मुनि भी उनकी परिचर्या के लिए ठहर गये। गुरु ने विशाखाचार्य (इस कथा में ये चन्द्रगुप्त से भिन्न हैं) को पट्ट पर नियुक्तकर उनके साथ संघ को दक्षिणदेश भेज दिया। भद्रबाहु ने उस अटवी में सल्लेखनापूर्वक शरीर का त्याग किया।

इधर उज्जयिनी में भयंकर अकाल पड़ा। वहाँ जो रामल्य, स्थूलभद्र आदि मुनि गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके रह गये थे, वे दुर्भिक्षजन्य उपद्रवों से बहुत पीड़ित हुए। एक मुनि आहार लेकर जा रहे थे। भूखे लोगों ने उनका उदर फाड़ डाला और उसमें से अन्न निकाल कर खा गये। क्षुधार्त्त लोग श्रावकों के द्वार पर पहुँचकर भोजन माँगते थे। श्रावक भय से किवाड़ नहीं खोलते थे। एक दिन श्रावक साधुसंघ के पास पहुँचे और निवेदन किया कि हम लोग दिन में भोजन नहीं बना सकते, रात्रि में भोजन बनता है। इसलिए आप लोग रात्रि में हमारे गृहों से पात्रों में आहार ले जायँ और अपने स्थान पर ही दिन निकलने पर उसे ग्रहण करें। जब सुभिक्ष हो जायेगा, तब आप प्रायश्चित्त करके पुनः पूर्ववत् मुनिधर्म का पालन करें। साधुओं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्होंने तुम्बी के पात्र ग्रहण कर लिए तथा भिखारियों और कुत्तों से रक्षा के लिए दण्ड भी रख लिये और रात्रि में श्रावकों के घर जाकर पात्रों में भोजन लाने लगे।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

एक दिन रात्रि में एक दुबला-पतला नग्न साधु हाथ में पात्र लिये भिक्षा के लिए यशोभद्र सेठ के मकान में प्रविष्ट हुआ। सेठ की गर्भवती पत्नी उसे राक्षस समझकर भयभीत हो गई और उसका गर्भपात हो गया। तब श्रावकों ने साधुओं से निवेदन किया कि आप लोग कन्धे पर कम्बल डाल कर भिक्षा के लिए आया करें, ताकि आपकी नग्नता ढँक जाय और स्त्रियाँ भयभीत न हों। साधुओं ने यह बात भी स्वीकार कर ली। तब से वे अर्धफालक भी धारण करने लगे।

जब सुभिक्ष हुआ, तब विशाखाचार्य संघ को लेकर उज्जयिनी लौट आये। स्थूलाचार्य ने उनके दर्शनार्थ अपने शिष्यों को भेजा। शिष्यों ने उन्हें वन्दना की, किन्तु विशाखाचार्य ने प्रतिवन्दना नहीं की और पूछा—"मेरी अनुपस्थिति में तुम लोगों ने यह कौनसा दर्शन अपना लिया?" शिष्य लज्जित हुए उन्होंने लौटकर यह वृतान्त अपने गुरु को सुनाया। तब रामिल्य, स्थूलभद्र तथा स्थूलाचार्य ने अपने-अपने संघ के मुनियों को उस दूषित मार्ग को छोड़कर पुनः निर्ग्रन्थमार्ग अपनाने का आदेश दिया। स्थूलाचार्य के वचन सुनकर कुछ साधुओं ने तो मूलमार्ग अपना लिया, किन्तु अधिकांश मुनि उस सुखमय मार्ग को छोड़कर कठिन निर्ग्रन्थमार्ग को अपनाने के लिए तैयार नहीं हुए। जब स्थूलाचार्य ने पुनः आग्रह किया, तब वे मुनि बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने दण्डप्रहार करके स्थूलाचार्य का वध कर दिया। तब से उनका संघ अर्धफालक संघ कहलाने लगा।

बहुत काल बीत जाने पर (वि० सं० १३६ में) रानी चन्द्रलेखा के आमन्त्रण पर वह अर्द्धफालकसंघ सौराष्ट्र देश के वलभीपुर नगर में आया। उस समय इस संघ के आचार्य जिनचन्द्र थे। रानी चन्द्रलेखा ने अपनी पितृनगरी उज्जयिनी में उस अर्धफालकसंघ के साधुओं से शास्त्रों का अध्ययन किया था। अतः वह उन्हें अपना गुरु मानती थी। उसने उनका बहुत स्वागत किया, किन्तु राजा को उनका वेश पसन्द नहीं आया। उसने रानी से कहा, "इन साधुओं का यह कैसा विचित्र रूप है? ये नग्न भी हैं और वस्त्र भी ग्रहण किये हुए हैं। ऐसे साधु तो कहीं नहीं देखे। इन लोगों ने यह कौन सा निन्दनीय मत प्रचलित किया है?" राजा के हृदय के भाव को समझकर रानी ने उन साधुओं के पास श्वेतवस्त्र भेजे और उन्हें पहनने की प्रार्थना की। साधुओं ने रानी की प्रार्थना स्वीकार कर ली।[९] उस दिन से वह अर्धफालकसंघ श्वेताम्बरसंघ कहलाने लगा। इस प्रकार श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति विक्रम संवत् १३६ (७९ ई०) में हुई।[१०]

---

९. भद्रबाहुचरित / परिच्छेद २, ३ एवं ४ / श्लोक १-५३।

१०. धृतानि श्वेतवासांसि तद्दिनात्समजायत।
श्वेताम्बरमतं ख्यातं ततोऽर्द्धफालकमतात्॥ ४ / ५४॥
मृते विक्रमभूपाले षट्त्रिंशदधिके शते।
गतेऽब्दानामभूल्लोके मतं श्वेताम्बराभिधम्॥ ४ / ५५॥ भद्रबाहुचरित।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

९

विसंगतियाँ

इन कथाओं में बड़ी विसंगतियाँ हैं। उन पर थोड़ी दृष्टि डाली जाय। वे इस प्रकार हैं—

१. श्रवणबेलगोल के शिलालेख तथा आचार्य हरिषेण एवं भट्टारक रत्ननन्दी के अनुसार जिन भद्रबाहु ने द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष की भविष्यवाणी की थी, वे पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे, जिनकी मृत्यु वीरनिर्वाण संवत् १६२ (ई० पू० ३६५) में हुई थी, किन्तु 'भावसंग्रह' एवं 'दर्शनसार' के कर्त्ता आचार्य देवसेन के अनुसार वे श्रुतकेवली भद्रबाहु से भिन्न थे। वे विक्रम संवत् १३६ (ई० सन् ७९) में हुए थे।[११]

२. शिलालेख एवं रत्ननन्दी के अनुसार भद्रबाहु शिष्यों-सहित उज्जयिनी से दक्षिणापथ गये थे। हरिषेण और देवसेन (भावसंग्रह) के अनुसार वे उज्जयिनी में ही रहे और मुनिसंघ को लेकर विशाखाचार्य (चन्द्रगुप्त) दक्षिणापथ गये थे।

३. शिलालेख के अनुसार भद्रबाहु ने समाधिमरण कटवप्र (श्रवणबेलगोल की चन्द्रगिरि) पर किया था, किन्तु हरिषेण के अनुसार भाद्रपददेश में तथा रत्ननन्दी के अनुसार दक्षिणापथ के मार्ग में किया था।

४. हरिषेण का कथन है कि चन्द्रगुप्त का नाम विशाखाचार्य था, किन्तु रत्ननन्दी उन्हें चन्द्रगुप्त मुनि ही कहते हैं, विशाखाचार्य नाम किसी और के लिए प्रयुक्त करते हैं। शिलालेख, 'भावसंग्रह' और 'दर्शनसार' में उनका नाम ही नहीं है।

५. हरिषेण कहते हैं कि रामिल्ल, स्थविर स्थूल और भद्राचार्य दुर्भिक्ष के समय सिन्धुदेश गये थे, उधर रत्ननन्दी कहते हैं कि वे उज्जैन में ही रहे। देवसेन इनके बदले शान्त्याचार्य और उनके शिष्य जिनचन्द्र का वलभीपुर जाना मानते हैं।

६. देवसेन का कथन है कि वलभीपुर में जिनचन्द्र ने अपने गुरु शान्त्याचार्य की हत्या की थी, रत्ननन्दी कहते हैं—शिथिलाचारप्रेमी साधुओं ने उज्जयिनी में अपने गुरु स्थूलाचार्य का वध किया था। हरिषेण ने किसी के भी वध का उल्लेख नहीं किया।

७. हरिषेण और रत्ननन्दी पहले श्रुतकेवली भद्रबाहु की मृत्यु के बाद वीर निर्वाण संवत् १६२ (३६५ ई० पूर्व) में अर्धफालक सम्प्रदाय की उत्पत्ति बतलाते हैं, पश्चात् वि० सं० १३६ (७९ ई०) में अर्धफालक सम्प्रदाय से श्वेताम्बर सम्प्रदाय की। देवसेन

११. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश ४ / ७७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अर्धफालक सम्प्रदाय की उत्पत्ति नहीं बतलाते, उनके अनुसार वि० सं० १३६ में सीधे श्वेताम्बरसंघ का ही उदय हुआ था।

१०

विश्वसनीय अंश

इन विसंगतियों के कारण उक्त कथाओं की सभी बातें विश्वसनीय नहीं हैं, कुछ ही विश्वासयोग्य हैं। यह विश्वासयोग्य है कि उज्जयिनी या मालवदेश में होनेवाले द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष को निमित्तज्ञान से जानकर अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु बारह हजार शिष्यों के साथ दक्षिणापथ गये और मार्ग में अथवा श्रवणबेलगोल में उनका समाधिमरण हुआ तथा दुर्भिक्ष समाप्त होने पर संघ विशाखाचार्य के नेतृत्व में उज्जयिनी या मध्यप्रदेश लौट आया। इन घटनाओं की विश्वसनीयता का कारण यह है कि ये श्रवणबेलगोल के पूर्वोक्त शिलालेख से मेल खाती हैं।

यह भी विश्वसनीय है कि जो साधु उज्जयिनी में रह गये थे या वहाँ से सिन्धुदेश अथवा सौराष्ट्रदेश के वलभीपुर नगर में चले गये थे, वे वहाँ के दुर्भिक्षजन्य संकटों के कारण भ्रष्ट हो गये थे। लोगों के कहने पर वे बायें हाथ पर अर्धफालक लटकाकर तथा दायें हाथ में भिक्षापात्र लेकर रात्रि में भिक्षाग्रहण करने के लिए जाने लगे थे और भिक्षा को अपनी वसतिका में लाकर दिन में ग्रहण करते थे। यह विश्वसनीय इसलिए है कि अर्धफालक ग्रहण करने की बात मथुरा के कंकालीटीले से प्राप्त प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० के जैन पुरावशेषों से प्रमाणित होती है। वहाँ से प्राप्त एक शिलापट्ट में एक नग्न जैनसाधु बायें हाथ पर अर्धफालक (वस्त्रखण्ड) लटकाए हुए मूर्तित है। वह जैन यति आर्यकृष्ण की मूर्ति बतलायी गयी है।[१२]

यह भी संभव है कि इसके बहुत वर्षों बाद (विक्रम सं० १३६ में) अर्धफालक साधुओं ने सौराष्ट्र के वलभीपुर में पहुँचने पर वहाँ के राजा या रानी के कहने से श्वेतवस्त्र पहनने शुरू कर दिये हों, क्योंकि जो साधु दुर्भिक्ष के समय उदरपूर्ति के लिए श्रावकों के कहने पर अर्धफालक और पात्र ग्रहण कर सकते हैं, वे राजमान्यता प्राप्त करने के लिए राजा या रानी के कहने पर श्वेतवस्त्र भी धारण कर सकते हैं।

किन्तु यह विश्वसनीय नहीं है कि इन्हीं कारणों से या इन्हीं समयों में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई थी, **क्योंकि हम पूर्व में देख चुके हैं कि जम्बूस्वामी के**

१२. पं.कै.च.शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / पूर्व पीठिका / पृ.३८२-३८३ तथा जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश / ४ / ७८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

निर्वाण के बाद से ही साधुओं का एक वर्ग वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रौंछन आदि का उपयोग करने लगा था और यह प्रतिपादित करने लगा था कि ये संयम और लज्जा के साधन हैं, इसलिए भगवान् महावीर ने इन्हें परिग्रह नहीं कहा है, अपितु इनमें मूर्च्छा होने को परिग्रह कहा है और ये प्रतिपादन शास्त्रों के अंग बन गये थे। आचार्य शय्यंभव द्वारा रचित दशवैकालिक सूत्र की पूर्वोद्धृत (अध्याय २/ पा.टि.१८ एवं ९५ में उद्धृत) **गाथाओं से इसकी पुष्टि होती है। आचारांग और स्थानांगसूत्र में भी अशक्त मुमुक्षुओं के लिए लज्जा, जुगुप्सा और परीषह पीड़ा के निवारणार्थ वस्त्रपात्रादि के उपयोग को मोक्ष के अपवादमार्ग के रूप में विहित कर दिया गया था।**

यद्यपि श्वेताम्बर-मान्य आचारांगादि आगम पाँचवीं शती ई० में श्री देवर्द्धिगणी द्वारा वलभीनगर में प्रथमबार लिपिबद्ध किये गये थे,[१३] तथापि उनका मौखिक सूत्रीकरण जम्बूस्वामी के पश्चात् एवं कुन्दकुन्द के पूर्व हुआ होगा, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि श्वेताम्बर-सम्प्रदाय जम्बूस्वामी के निर्वाणानन्तर ही अस्तित्व में आ गया था और कोई भी सम्प्रदाय नवीन सिद्धान्तों के निर्धारण के बिना न तो अस्तित्व में आ सकता है, न विकसित हो सकता है। सचेलाचेल धर्म के प्रतिपादक आचारांगादि आगम जम्बूस्वामी के पूर्ववर्ती सुधर्मा स्वामी द्वारा रचित हैं, यह मान्यता इस मान्यता पर आश्रित है कि भगवान् महावीर ने मोक्ष के लिए अचेल और सचेल दोनों धर्मों का उपदेश दिया था। किन्तु श्वेताम्बर-शास्त्रों में स्वयं कहा गया है कि भगवान् ऋषभदेव और महावीर ने अचेलधर्म का ही उपदेश दिया था, शेष तीर्थंकरों ने अचेल और सचेल दोनों का।[१४] इससे सिद्ध है कि अचेल और सचेल उभय धर्मों के प्रतिपादक आचारांगादि आगम भगवान् महावीर के उपदेश पर आश्रित नहीं हैं। उनकी रचना जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् उदित हुए श्वेतपटसम्प्रदाय के आचार्यों द्वारा की गयी है। इस प्रकार जम्बूस्वामी के निर्वाणानन्तर मुनियों के एक वर्ग द्वारा वस्त्रपात्रादि के उपयोग का आरम्भ एवं शास्त्रों में उनकी संयमसाधकता का प्रतिपादन तथा उनके परिग्रह होने का निषेध इस

---

१३. "श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणेन श्रीवीराद् अशीत्यधिकनवशत (९८०) वर्षे जातेन द्वादशवर्षीय-दुर्भिक्षवशाद् बहुतरसाधुव्यापत्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ जातायां --- भविष्यद्भव्य-लोकोपकाराय श्रुतभक्तये च श्रीसङ्घाग्रहाद् मृतावशिष्टतदाकालीन-सर्वसाधून् वलभ्यामाकार्य तन्मुखाद-विच्छिन्नावशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितान् आगमालापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या सङ्कलय्य पुस्तकारूढाः कृताः। ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्सङ्कलनानन्तरं सर्वेषामपि आगमानां कर्त्ता श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः।" समयसुन्दरगणि-रचित 'सामाचारीशतक'/ पं० बेचरदासकृत 'जैनसाहित्य में विकार' पा.टि. / पृ. ९-१० से उद्धृत।

१४. देखिए, अध्याय ३ / प्रकरण १ / शीर्षक ५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

बात के प्रमाण हैं कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् ही संघभेद हो चुका था और दिगम्बर-श्वेताम्बर सम्प्रदाय अस्तित्व में आ गये थे।

जम्बूस्वामी के बाद ही संघभेद होने का इससे भी बड़ा प्रमाण यह है कि उनके बाद दोनों सम्प्रदायों की आचार्यपरम्परा बिलकुल अलग-अलग हो जाती है। चार पीढ़ियों तक अर्थात् ७१ या श्वेताम्बरों के अनुसार ९२ वर्षों तक दोनों सम्प्रदायों में अलग-अलग आचार्यपरम्परा चलती रहती है। इसके बाद थोड़े समय (२९ या १४ वर्ष) के लिए केवल श्रुतकेवली भद्रबाहु ऐसे व्यक्ति आते हैं, जो दोनों परम्पराओं को मान्य होते हैं, किन्तु श्वेताम्बरसंघ में उनका दर्जा उपेक्षित और बहिष्करणीय होता है। उन्हें संघ से बहिष्कृत करने की धमकियाँ दी जाती हैं, आगमवाचना में आमन्त्रित नहीं किया जाता और अन्ततः संघ से बहिष्कृत कर दिया जाता है।[१५] उनके बाद दोनों सम्प्रदायों की आचार्यपरम्परा पुनः भिन्न-भिन्न हो जाती है। इससे प्रकट होता है कि भद्रबाहु भी यथार्थतः दिगम्बरपरम्परा में ही मान्य थे। श्वेताम्बरपरम्परा में भद्रबाहु के स्थान पर स्थूलभद्र को महत्त्व दिया गया है। इस तरह दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों का जन्म वस्तुतः जम्बूस्वामी के पश्चात् ही हो गया था अर्थात् वीर निर्वाण के ६२ या ६४ वर्ष बाद ही। अतः श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में संघभेद मानना उचित नहीं है। हाँ, यह मानना ठीक है कि द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के कारण और भी अचेलक साधु , जो उज्जयिनी में रह गये थे अथवा सिन्धुदेश या सौराष्ट्र के वलभीपुर चले गये थे, वे अर्धफालक एवं भिक्षापात्र धारण करने लगे थे। उज्जयिनी लौटने पर उनमें से कुछ साधु पुनः दिगम्बर बन गये और कुछ साधु श्वेताम्बरसंघ में शामिल हो गये तथा शेष साधु लगभग ४५० वर्ष तक उसी रूप में विहार करते रहे।[१६] पश्चात् वि० सं० १३६ में वलभीपुर में श्वेताम्बरों की तरह श्वेतकटिवस्त्र एवं प्रावरण धारण कर श्वेताम्बर बन गये। किन्तु यह संघभेद की द्वितीय घटना थी। इसके पूर्व जम्बूस्वामी के अनन्तर जो दिगम्बर-श्वेताम्बर भेद हुआ था, वह संघभेद की प्रथम घटना थी। सर्वथा अचेलमार्गी निर्ग्रन्थों का पहला सचेलीकरण (श्वेतकटिवस्त्र एवं श्वेत प्रावरणधारी के रूप में) तो परीषहपीड़ा से मुक्ति पाने के लिए हुआ था और दूसरा सचेलीकरण (केवल कलाई पर लटकते हुए अर्धफालकधारी के रूप में) दुर्भिक्ष में उदरपोषणार्थ स्वीकार किया गया। विक्रम सं० १३६ में वलभीपुर में राजमान्यता की लालसा से अर्धफालकधारियों का श्वेताम्बरीकरण हुआ था, अचेलकों का नहीं। इस तरह दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद और दिगम्बर-अर्धफालक-भेद, संघभेद की ये दो अलग-अलग घटनाएँ थी। दूसरी घटना से श्वेताम्बरसंघ की वृद्धि हुई थी, शुरुआत नहीं। शुरुआत तो जम्बूस्वामी के बाद ही हो गई थी।

---

१५. देखिए , अगला शीर्षक।

१६. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश ४ / ७७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

११

श्वेताम्बरसाहित्य में भद्रबाहु-विवाद-कथा

श्वेताम्बर-साहित्य में भी भद्रबाहु के समय में बारह वर्ष का दुष्काल पड़ने का उल्लेख है। किन्तु उसके अनुसार भद्रबाहु दक्षिणापथ न जाकर नेपाल देश की ओर अकेले जाते हैं और शेष साधुसंघ निर्वाह के लिए समुद्र किनारे चला जाता है। उसमें संघ के साथ भद्रबाहु के विवाद का भी वर्णन है, जिसकी परिणति उन्हें संघ से निकाले जाने में होती है। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने **परिशिष्टपर्व** में भद्रबाहु की कथा का वर्णन इस प्रकार किया है—

भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर साधुसंघ निर्वाह के लिए समुद्र तट की ओर चला गया। इस काल में श्रुत का अभ्यास न हो सकने से साधु उसे भूल गये। दुष्काल समाप्त होने पर सम्पूर्ण संघ पाटलिपुत्र में इकट्ठा हुआ और जिसको जिस अंग का जो अध्ययन या उद्देश याद था वह संकलित किया गया (सबको परस्पर जोड़कर साधुओं ने अपनी स्मृति में अंकित किया)। इस तरह ग्यारह अंग संकलित किये गये। किन्तु दृष्टिवाद का किसी को ज्ञान नहीं था, इसलिए उसके विषय में संघ सोच में पड़ गया। फिर उसे मालूम हुआ कि दृष्टिवाद के ज्ञाता भद्रबाहु हैं और वे नेपालदेश के मार्ग में स्थित हैं। संघ ने उन्हें बुलाने के लिए दो मुनि भेजे। मुनियों ने जाकर नमस्कार किया और हाथ जोड़कर निवेदन किया कि संघ ने आपको पाटलिपुत्र आने का आदेश दिया है।

भद्रबाहु बोले—"मैंने महाप्राण ध्यान का आरम्भ किया है, जो बारह वर्षों में पूर्ण होगा, इसलिए मैं अभी नहीं आ सकता।" मुनियों ने जाकर संघ को यह बात बतला दी। तब संघ ने अन्य दो मुनियों को बुलाकर आदेश दिया कि "तुम जाकर भद्रबाहु से पूछना कि जो श्रीसंघ का शासन नहीं मानता, उसे क्या दण्ड दिया जाना चाहिए? जब वे कहें कि संघ से बहिष्कृत कर देना चाहिए, तब उनसे उच्चस्वर में कहना—आप इसी दण्ड के योग्य हैं।" मुनियों ने जाकर भद्रबाहु से यही बात कही और उन्होंने भी वही उत्तर दिया। फिर भद्रबाहु ने कहा संघ मुझे बहिष्कृत न करे, मेरे पास कुछ मेधावी शिष्य भेज दे। मैं उन्हें प्रतिदिन सात वाचनाएँ दूँगा। इससे संघ का कार्य भी सिद्ध हो जायेगा और मेरे कार्य में भी बाधा नहीं आयेगी। मुनियों ने आकर संघ को यह वृतान्त सुनाया। तब संघ ने स्थूलभद्र आदि पाँच सौ साधुओं को भेजा। उनमें से केवल स्थूलभद्र ही वहाँ रुके, शेष उद्विग्न होकर चले आये।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

महाप्राण ध्यान पूरा होने तक भद्रबाहु ने स्थूलभद्र को दश पूर्वों का अध्ययन कराया। पश्चात् वे दोनों पाटलिपुत्र आ गये और बाह्योद्यान में ठहरे। वहाँ स्थूलभद्र की बहनें अपने भाई के दर्शन करने आयीं। उन्होंने भद्रबाहु गुरु की वन्दना करके पूछा—"प्रभु, स्थूलभद्र कहाँ हैं?" उन्होंने कहा—"लघु देवकुल में हैं।" तब वे वहाँ गयीं। उन्हें आती हुई देखकर आश्चर्यचकित करने के लिए स्थूलभद्र ने दस पूर्वों के अध्ययन के प्रभाव से अपने को सिंह बना लिया। बहनें घबरा गयीं और भद्रबाहु के पास जाकर बोलीं—"भगवन्! भैया को तो सिंह ने खा लिया और वह अब भी वहाँ बैठा हुआ है।" आचार्य ने अपने उपयोग से जानकर कहा—"तुम लोग जाओ, वन्दना करो, वह तुम्हारे बड़े भाई ही हैं, सिंह नहीं।" इस घटना के बाद आचार्य ने स्थूलभद्र को आगे वाचना देना बन्द कर दिया, क्योंकि उन्होंने सोचा कि ये पूर्वों की वाचना के पात्र नहीं हैं, ये ज्ञान का उपयोग ज्ञान के लिए न कर चमत्कार दिखलाने के लिए करते हैं। (परिशिष्टपर्व/९/५५-११२)।

किन्तु संघ के अत्याग्रह से अन्तिम चार पूर्वों की वाचना तो दी, पर अर्थ नहीं बताया और दूसरों को उसकी वाचना देने से स्पष्ट मना करा दिया। इस तरह अर्थ की दृष्टि से तो 'अन्तिम श्रुतकेवली' भद्रबाहु ही हैं। स्थूलभद्र शाब्दिक दृष्टि से चौदहपूर्वी थे और अर्थ की दृष्टि से केवल दसपूर्वी।"[१७]

"तित्थोगालीपइन्नय (गाथा ७३०-७३३) में लिखा है कि भद्रबाहु के उत्तर से नाराज होकर स्थविरों ने कहा—"संघ की प्रार्थना का अनादर करने से तुम्हें क्या दण्ड मिलेगा, इसका विचार करो।" भद्रबाहु ने उत्तर दिया—"मैं जानता हूँ कि संघ इस प्रकार के वचन बोलनेवाले का बहिष्कार कर सकता है।" तब स्थविर बोले—"तुम संघ की प्रार्थना का अनादर करते हो --- इसलिए श्रमणसंघ तुम्हारे साथ बारहों प्रकार का व्यवहार बन्द करता है।"[१८]

"इन उल्लेखों से जहाँ एक ओर संघ के साथ भद्रबाहु की खींचतान होने पर प्रकाश पड़ता है, वहाँ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि पाटलिपुत्र की वाचना में भद्रबाहु उपस्थित नहीं थे। इस पर डॉ० जेकोबी ने लिखा है कि पाटलिपुत्र नगर में जैनसंघ ने जो अंग संकलित किये थे, वे केवल श्वेताम्बर-सम्प्रदाय के ही थे, समस्त जैनसंघ के नहीं थे, क्योंकि उस जैनसंघ में भद्रबाहु सम्मिलित नहीं थे। (सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट / जिल्द २२ की प्रस्तावना / पृ.४३)"[१९]

---

१७. कल्पसूत्र / सम्पादक : देवेन्द्र मुनिशास्त्री / विवेचन-सूत्र २०७ / पृ. २९०।

१८. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका / पृ. ४८९।

१९. वही / पृ. ४९०

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं वाणिज्य ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि भद्रबाहु को श्वेताम्बरपरम्परा भी अपना धर्मगुरु मानती है, तथापि श्वेताम्बरसम्प्रदाय की आचार्यपरम्परा का आरम्भ श्रुतकेवली भद्रबाहु से न होकर स्थूलभद्र (सम्भूतिविजय के शिष्य) से होता है। उनके यहाँ श्रुतकेवली भद्रबाहु की शिष्यपरम्परा का अभाव है और स्थूलभद्र को अन्तिम श्रुतकेवली लिखा है।[२०]

यहाँ पाँच घटनाएँ सामने आती हैं—१. दुर्भिक्ष के समय भद्रबाहु का संघ के साथ समुद्रतट की ओर न जाना, इसके विपरीत नेपाल चले जाना, २. यह जान लेने पर भी कि उन्होंने महाप्राण ध्यान आरंभ किया है, संघ द्वारा उन्हें बहिष्कृत करने की धमकी देना तथा ३. अन्ततः बहिष्कृत कर देना, ४. पाटलिपुत्र वाचना में उन्हें न बुलाया जाना और ५. स्थविरपरम्परा को उनके नाम से न चलाया जाना।

इन घटनाओं से सिद्ध होता है कि भद्रबाहु नवीन सचेलमार्गी प्रवृत्तियों के समर्थक नहीं थे, वे शुद्ध अचेलकधर्म के अनुयायी थे, इसलिए मूल निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बरसंघ) की आचार्यपरम्परा में उनका अन्तिम श्रुतकेवली के रूप में सम्मान्य स्थान था। इसी कारण नवीन सचेलमार्गी संघ उनसे अपनापन महसूस नहीं करता था और उन्हें पर्याप्त आदर नहीं देता था, तथापि उस संघ को दृष्टिवाद नामक बारहवें अंग का ज्ञान उनसे ही उपलब्ध हुआ था, इसलिए संघ ने उनका नाम नाममात्र के लिए अपनी स्थविरपरम्परा में शामिल कर लिया। इस कारण दोनों परस्परविरुद्ध परम्पराओं में उनका नाम मिलता है।

श्वेताम्बर-साहित्य में उपलब्ध यह कथा भी, जिसमें भद्रबाहु को पाटलिपुत्रवाचना में आमन्त्रित न किये जाने और संघ से बहिष्कृत कर देने का उल्लेख है, इस बात की पुष्टि करती है कि भद्रबाहु के समय में मूल निर्ग्रन्थसंघ अचेल और सचेल (अर्धफालक) सम्प्रदायों में एक बार फिर विभाजित हो गया था।

भद्रबाहु और उनके अनुयायियों की अनुपस्थिति में आगमों के संकलन का जो कार्य किया गया, वह संघभेद का एक महान् कारण था, यह बात अनेक श्वेताम्बर विद्वानों और सन्तों ने स्वीकार की है। इतिहासकार श्री चिमनलाल जैचन्द शाह लिखते हैं—

---

२०. "तं जहा-थेरस्स णं अज्जजसभद्दस्स --- अंतेवासी दुबे थेराथेरे अज्ज संभूअविजए --- थेरे अज्जभद्दबाहू ---। थेरस्स णं अज्जसंभूअविजयस्स --- अंतेवासी थेरे अज्ज थूलभद्दे ---। थेरस्स णं अज्ज थूलभद्दस्स --- अंतेवासी दुबे थेरा ---।" कल्पसूत्रस्थविरावली। (पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका / पा.टि.पृ. ३७९-३८०)।

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"भद्रबाहु और उनके शिष्यों के दक्षिण-प्रवास के पश्चात् जैनधर्म के पवित्र सिद्धान्त-ग्रन्थों का विस्मरण द्वारा नाश होने का भय उपस्थित हो गया और स्थूलभद्र एवं उनके शिष्यों ने एक परिषद् उन साधुओं की निमन्त्रित की, जो उधर ही रह गये थे। यह परिषद् ई० पूर्व तीसरी सदी में मौर्यसाम्राज्य की राजधानी एवं जैनसंघ के इतिहास में प्रसिद्ध पाटलिपुत्र में एकत्रित हुई थी। "जैनों की इस परिषद् ने", जैसा कि डॉ० शार्पेंटियर कहता है, "बहुत कुछ वही कार्य किया होगा, जो बौद्धों की पहली संगीति याने परिषद् ने किया था।" इस परिषद् ने अंगों और पूर्वों दोनों का ही पाठ स्थिर किया और यहीं से सिद्धान्त की प्रथम भूमिका प्रारम्भ हुई। परन्तु दक्षिण से लौटनेवाले मुनियों को सिद्धान्त के इस प्रकार स्थिर किये गये पाठ से सन्तोष नहीं हुआ। उनने इस सिद्धान्त को मानने से इनकार ही नहीं किया, अपितु यह भी घोषित कर दिया कि पूर्वज्ञान और अंगज्ञान दोनों का ही विच्छेद हो गया है।" (उत्तरभारत में जैनधर्म / पृ.१८४)।

आदरणीय श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने जो विचार प्रकट किये हैं, वे इस प्रकार हैं—"वीर निर्वाण १६० के लगभग भद्रबाहु के समय पाटलिपुत्र में जो आगमवाचना हुई, उस समय दोनों परम्पराओं का मतभेद उग्र हो गया। इसके पहले आगम के विषय में एकता थी, किन्तु दीर्घकाल के दुष्काल में अनेक श्रुतधर मुनि परलोकवासी हो गये। भद्रबाहु की अनुपस्थिति में ग्यारह अंगों का संकलन-आकलन हुआ पर वह सभी को समान रूप से मान्य नहीं हो सका और दोनों ही विचारधाराओं का मतभेद स्पष्टरूप से सामने आया। वीरनिर्वाण सं० ८२७-८४० के बीच माथुरी वाचना हुई, उसमें जो श्रुत का रूप निश्चित हुआ वह अचेलक-समर्थकों को बिलकुल भी स्वीकार नहीं हुआ। इस तरह आचार और श्रुत के सम्बन्ध में मतभेद उग्र होते गये और वीर निर्वाण की छठी और सातवीं शताब्दी में एक निर्ग्रन्थ शासन दो भागों में विभक्त हो गया।" (जै.आ.सा.म.मी./ पृ.५६३)।

यहाँ मुनि जी ने वीरनिर्वाण की छठी और सातवीं शताब्दी में निर्ग्रन्थशासन के दो भागों में विभक्त होने की बात बोटिककथा के आधार पर कही है, किन्तु यह हम पहले ही देख चुके हैं कि बोटिक शिवभूति ने किसी नये मत का प्रचलन नहीं किया था, अपितु जिस जिनकल्प को जम्बूस्वामी के बाद विच्छिन्न मान लिया गया था, उसको अंगीकार किया था। अतः वास्तविक संघभेद जम्बूस्वामी के बाद ही हो गया था।

माननीय डॉ० सागरमल जी ने भी अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के अपने अचेलकधर्म के सिद्धान्तों के साथ दक्षिणभारत जाने और उनके प्रचार करने की बात

स्वीकार की है और यह माना है कि उनके अनुयायियों ने पाटलिपुत्र आदि की वाचनाओं में संकलित आगमों को अमान्य कर दिया था, क्योंकि उनमें सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति आदि का प्रतिपादन था और वे मूल आगमों को विच्छिन्न मानने लगे थे। (जै.ध.या.स./ पृ. ४६-४७)। इससे सिद्ध होता है कि भद्रबाहु और उनके अनुयायी सवस्त्रमुक्ति-विरोधी और स्त्रीमुक्ति-विरोधी विचारधारा के अनुगामी थे।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एव धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय प्रकरण

डॉ० सागरमल जी का अन्तिम मत इतिहास-सम्मत

१

अनेक दिशाओं में भटकी विचारयात्रा

संघभेद के विषय में डॉ० सागरमल जी की विचारयात्रा अनेक दिशाओं में भटकी है। आठ वर्ष बाद वह सही दिशा प्राप्त कर सकी। सन् १९९६ में लिखित 'जैनधर्म का यापनीयसम्प्रदाय' नामक ग्रन्थ में पहले उन्होंने अपनी यह मान्यता व्यक्त की है कि भगवान् महावीर के संघ का प्रथम विभाजन श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय (ईसापूर्व चौथी शताब्दी) में हुआ था और दूसरा विभाजन ईसा की द्वितीय शताब्दी में (वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद) हुआ।[२१] इस मान्यता का प्रकाशन उन्होंने निम्नलिखित वक्तव्यों में किया है—

"यापनीयों के दक्षिण में प्रवेश के पूर्व भद्रबाहु के पहले या उनके साथ जो निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग दक्षिण चला गया था, वह अपने आप को 'निर्ग्रन्थ' ही कहता होगा, क्योंकि उस समय तक संघभेद या गणभेद नहीं हुआ था। --- निर्ग्रन्थसंघ मूलसंघ से भिन्न नहीं था, यह उन अचेल श्रमणों का वर्ग था, जो भद्रबाहु के पूर्व या भद्रबाहु के समय से दक्षिण भारत में विचरण कर रहे थे। (जै.ध.या.स./ पृ. ४५)।

"भद्रबाहु के पूर्व या उनके साथ जो मुनिसंघ दक्षिण की यात्रा पर गया था, वह यद्यपि अपने साथ महावीर का तत्त्वज्ञान और आचारमार्ग लेकर अवश्य गया था, किन्तु उनके पास मात्र उतना ही साहित्य रहा होगा, जितना भद्रबाहु के काल तक निर्मित हो पाया था। --- यापनीयसंघ, जो कि उनके बाद लगभग पाँच सौ वर्ष पश्चात् उत्तरभारत की निर्ग्रन्थधारा से अलग होकर दक्षिण भारत पहुँचा था,[२२] वह अपने साथ जिन आगम ग्रन्थों को ले गया था, उनको मूलसंघ ने मानने से इनकार कर दिया होगा। क्योंकि उन ग्रन्थों में भी, चाहे वे अपवादमार्ग के रूप में ही क्यों न हों, वस्त्रपात्र आदि के उल्लेख तो थे ही। --- यापनीय वस्त्रपात्र को अपवादरूप से ग्राह्य मानते थे, क्योंकि उनके द्वारा मान्य आगमों और निर्मित ग्रन्थों, दोनों में ही अपवादरूप से इनके ग्रहण का उल्लेख मिलता है।" (जै.ध.या.स./ पृ.४६)।

---

२१. देखिये, अध्याय २/प्रकरण ३/पादटिप्पणी ६१।

२२. आगे चलकर डॉ० सागरमल जी ने यापनीयसंघ का उत्पत्तिकाल ईसा की पाँचवीं शती का प्रथम चरण मान लिया, जो समीचीन है। (देखिये, अध्याय २/प्रकरण ३/ शीर्षक १)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"मूलसंघ स्त्री को महाव्रतारोपणरूप दीक्षा देने के विरोध में रहा होगा, क्योंकि उसके द्वारा सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग सम्भव नहीं था। --- इसके अतिरिक्त केवलिभुक्ति, केवली को कितने परीषह होते हैं, आदि कुछ तात्त्विक मान्यताओं को लेकर भी दोनों (निर्ग्रन्थों और यापनीयों) में मतभेद रहा होगा।" (जै.ध.या.स. / पृ.४७)।

इन वक्तव्यों से डॉक्टर सा० की निम्नलिखित मान्यताएँ प्रकाशित होती हैं—

१. श्रुतकेवली भद्रबाहु के नेतृत्व में दक्षिणभारत गया निर्ग्रन्थश्रमणसंघ भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञान और आचारमार्ग का अनुयायी था। उसके पास उतना ही साहित्य मौजूद था, जितना उत्तरभारत से प्रस्थित होते समय तक निर्मित हो पाया था।

२. उसके दक्षिण भारत में पहुँचने के पाँच सौ वर्ष बाद (ईसा की द्वितीय शती में) वहाँ (दक्षिण) पहुँचा यापनीयसंघ जो आगम ले गया था, उन्हें उसने अमान्य कर दिया, क्योंकि उनमें साधुओं के लिए अपवादमार्ग के रूप में वस्त्रपात्रग्रहण करने की अनुमति थी तथा स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का प्रतिपादन किया गया था। इससे यह सूचित होता है कि **भद्रबाहुनीत निर्ग्रन्थसंघ** के पास जो भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट तत्त्वज्ञान, आचारमार्ग और यत्किञ्चित् साहित्य था, उसमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति को स्वीकार नहीं किया गया था।

३. अतः ये सवस्त्रमुक्ति आदि की मान्यताएँ श्रुतकेवली भद्रबाहु के दक्षिण चले जाने के बाद उत्तरभारत में रहनेवाले श्रमणसंघ ने भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट आगमों में प्रक्षिप्त की हैं।

४. भद्रबाहुनीत निर्ग्रन्थसंघ के दक्षिण भारत चले जाने के पश्चात् उत्तरभारत में स्थित रहे निर्ग्रन्थश्रमणसंघ ने पंचमकाल में अचेलमार्ग को असंभव घोषित कर सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि की मान्यताएँ कल्पित कर लीं और उनका आगमों में भी समावेश कर दिया। अतः वह एकान्त-सचेलमार्गी संघ बन गया। वीर नि० के ६०९ वर्ष बाद उसका भी विभाजन हुआ और उससे सचेलाचेलमार्गी यापनीय-संघ की उत्पत्ति हुई।

यापनीयसंघ की उत्पत्ति के स्रोत एवं कारण पर प्रकाश डालते हुए डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—

"जब उत्तरभारत में प्रवर्तित महावीर के श्रमणसंघ में वस्त्रपात्र रखने का आग्रह जोर पकड़ने लगा, भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट एवं आचरित अचेलकत्व अर्थात् जिनकल्प का विच्छेद बताकर उसका उन्मूलन किया जाने लगा, तो शिवभूति प्रभृति

कुछ प्रबुद्ध मुनियों ने उसका विरोध किया। इस विरोध की फलश्रुति-स्वरूप ही उस सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जो यापनीयों की पूर्व अवस्था थी और जिसे श्वेताम्बरों ने बोटिक या बोडिय कहा था।'' (जै.ध.या.स. / पृ.३८६-३८७)।

डॉक्टर सा० के इस कथन से स्पष्ट होता है कि भद्रबाहुनीत श्रमणसंघ के दक्षिणभारत चले जाने पर उत्तरभारत का श्रमणसंघ एकान्त-सचेलमार्गी बन गया था। इतना ही नहीं, उसके वस्त्रपात्रादि परिग्रह में बेतहाशा वृद्धि हो गई। उसी एकान्त-सचेलमार्गी श्रमणसंघ से सचेलाचेलमार्गी यापनीयसंघ का उद्भव हुआ था।

इस प्रकार डॉक्टर सा० के अनुसार भगवान् महावीर के निर्ग्रन्थसंघ में ईसापूर्व चौथी शताब्दी में दिगम्बर-श्वेताम्बरभेद ने जन्म लिया था। इनमें दिगम्बरसम्प्रदाय एकान्त-अचेलमार्गी था और श्वेताम्बरसम्प्रदाय एकान्त-सचेलमार्गी। एकान्त-सचेलमार्गी श्वेताम्बर-सम्प्रदाय से सचेलाचेलमार्गी यापनीयसंघ प्रकट हुआ।

किन्तु आगे चलकर डॉक्टर सा० उसी ग्रन्थ में अपना यह मत बदल देते हैं और कहते हैं कि भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट तीर्थ एकान्त-अचेलमुक्तिवादी नहीं था, अपितु सचेलाचेलमुक्तिवादी था। यह मत उनके निम्नलिखित शब्दों से प्रकट होता है—

''महावीर के काल से ही निर्ग्रन्थसंघ में नग्नता का एकान्त आग्रह नहीं था, किन्तु उसे अपवादरूप में ही स्वीकृत किया गया था।'' (जै.ध.या.स./ पृ. २५)।

''वस्तुतः महावीर के पश्चात् उनके संघ में वस्त्रपात्र ग्रहण करने का क्रमशः विकास हुआ है। क्षुल्लकों (युवा साधुओं) और सदोष लिंगवाले व्यक्तियों अथवा राजपरिवार से आये व्यक्तियों के लिए अपवादरूप से वस्त्र रखने का अनुमति पहले से ही थी, किन्तु जिनकल्प का विच्छेद मान कर जब सचेलता सामान्य नियम बनने लगी, तो शिवभूति ने इसका विरोध कर अचेलता को ही उत्सर्गमार्ग स्थापित करने का प्रयत्न किया।'' (जै.ध.या.स./ पृ.२५)।

फिर वे यह धारणा उत्पन्न करते हैं कि ईसापूर्व चौथी शती में महावीर का यह सचेलाचेल निर्ग्रन्थसंघ दिगम्बर-श्वेताम्बर-सम्प्रदायों में विभाजित नहीं हुआ था, अपितु द्वितीय शती ई० (वीर नि० सं० ६०९) में उससे श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई थी। देखिए उनके शब्द—

''वस्तुतः महावीर के धर्मसंघ में जब वस्त्रपात्र आदि में वृद्धि होने लगी और अचेलत्व की प्रतिष्ठा क्षीण होने लगी, तब उससे अचेलता के पक्षधर यापनीय ओर सचेलता के पक्ष-धर श्वेताम्बर ऐसी दो धाराएँ निकलीं।'' (जै.ध.या.स./ पृ.२४)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"यह सत्य है कि श्वेताम्बर और यापनीय दोनों ही उत्तर भारत की निर्ग्रन्थपरम्परा के समानरूप से उत्तराधिकारी रहे हैं और इसीलिए दोनों की आगमिक परम्परा एक ही है।" (जै.ध.या.स./ पृ.१०४)।

तब दिगम्बर मत कहाँ से आया? इस प्रश्न के उत्तर में डॉक्टर सा० का कहना है कि उसकी स्थापना विक्रम की छठी शती (पाँचवीं शती ई०) में दक्षिणभारत में आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी। अपनी इस नवीन मान्यता का प्रतिपादन करते हुए वे लिखते हैं—

"ई० सन् की पाँचवीं-छठी शताब्दी तक जैनपरम्परा में कहीं भी स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं था। स्त्रीमुक्ति एवं सग्रन्थ (सवस्त्र) की मुक्ति का सर्वप्रथम निषेध आचार्य कुन्दकुन्द ने सुत्तपाहुड में किया है।" (जै.ध.या.स./ पृ.३९४)।

"कुन्दकुन्द की स्त्रीमुक्ति-निषेधक-परम्परा सूदूर दक्षिण में ही प्रस्थापित हुई थी।" (जै.ध.या.स./ पृ.४०२)।

सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति का निषेध ही दिगम्बर-परम्परा के लक्षण हैं। उसे कुन्दकुन्द की परम्परा कहना और ईसवी सन् की पाँचवी-छठी शती तक जैनपरम्परा में स्त्रीमुक्ति आदि का निषेध स्वीकार न करना तथा सर्वप्रथम कुन्दकुन्द के ही ग्रन्थों में सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति का निषेध बतलाना, इन मान्यताओं से स्पष्ट होता है कि डॉक्टर सा० ने अपने नवीनमत में यह प्रतिपादित करने की कोशिश की है कि दिगम्बरपरम्परा की स्थापना ईसा की पाँचवीं-छठी शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी।

किन्तु ग्रन्थ समाप्त करते-करते डॉक्टर सा० पुनः पुराने मत पर आ जाते हैं। ग्रन्थ समाप्ति के बाद लिखे गये 'लेखकीय' में वे लिखते हैं—"पाँचवीं शती के लगभग जब इस (यापनीय) सम्प्रदाय का 'यापनीय' नामकरण हुआ, तब तक दिगम्बरसम्प्रदाय तो 'निर्ग्रन्थसम्प्रदाय' नाम से ही जाना जाता था।" (जै.ध.या.स./ लेखकीय / पृ. VI)

पाँचवीं शताब्दी तक दिगम्बरसम्प्रदाय का निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध होना, इस बात का प्रमाण है कि वह पाँचवीं शताब्दी के बहुत पहले से प्रवर्तमान था अर्थात् उसके प्रवर्तक कुन्दकुन्द नहीं थे। इस प्रकार डॉक्टर सा० ने अपना ग्रन्थ समाप्त करते-करते यह मत निरस्त कर दिया कि दिगम्बरमत की स्थापना आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी।

२

आज का दिगम्बरसंघ

भद्रबाहु-नीत अचेल निर्ग्रन्थसंघ का ही प्रतिनिधि

आठ वर्षों के अन्तराल के बाद डॉक्टर सागरमल जी पुनः अपनी इस मान्यता की पुष्टि करते हैं कि दिगम्बरपरम्परा श्रुतकेवली भद्रबाहु के निर्ग्रन्थसंघ का ही वर्तमानरूप है। इस प्रकार दिगम्बरमत की ऐतिहासिकता के अनुसन्धान पर निकली उनकी विचारयात्रा आठ वर्ष बाद सही दिशा प्राप्त कर सकी। इसकी जानकारी सन् २००४ ई० में प्रकाशित उनके नवीन लघु ग्रन्थ **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** में मिलती है। उसमें वे लिखते हैं—

''जो कुछ ऐतिहासिक साक्ष्य मिले हैं, उनसे ऐसा लगता है कि निर्ग्रन्थसंघ अपने जन्मस्थल बिहार से दो दिशाओं में अपने प्रचार-अभियान के लिए आगे बढ़ा। एक वर्ग दक्षिण-बिहार एवं बंगाल से उड़ीसा के रास्ते तमिलनाडु गया और वहीं से उसने श्रीलंका और स्वर्णदेश (जावा-सुमात्रा आदि) की यात्राएँ की। लगभग ई० पू० दूसरी शती में बौद्धों के बढ़ते प्रभाव के कारण निर्ग्रन्थों को श्रीलंका से निकाल दिया गया। फलतः वे पुनः तमिलनाडु में आ गये। तमिलनाडु में लगभग ई० पू० प्रथम-द्वितीय शती से ब्राह्मी लिपि में अनेक जैन अभिलेख मिलते हैं, जो इस तथ्य के साक्षी हैं कि निर्ग्रन्थसंघ महावीर के निर्वाण के लगभग दो-तीन सौ वर्ष पश्चात् ही तमिल प्रदेश में पहुँच चुका था। मान्यता तो यह भी है कि आचार्य भद्रबाहु चन्द्रगुप्त मौर्य को दीक्षित करके दक्षिण गये थे। यद्यपि इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता निर्विवाद रूप से सिद्ध नहीं हो सकती है, क्योंकि जो अभिलेख घटना का उल्लेख करता है, वह लगभग छठी-सातवीं शती का है। आज भी तमिल-जैनों की विपुल संख्या है और वे भारत में जैनधर्म के अनुयायियों की प्राचीनतम परम्परा के प्रतिनिधि हैं। ये नयनार एवं पंचमवर्णी के रूप में जाने जाते हैं। यद्यपि बिहार, बंगाल और उड़ीसा की प्राचीन जैनपरम्परा कालक्रम में विलुप्त हो गयी है, किन्तु सराक जाति के रूप में उस परम्परा के अवशेष आज भी शेष हैं। 'सराक' शब्द श्रावक का ही अपभ्रंशरूप है और आज भी इस जाति में रात्रिभोजन और हिंसक शब्दों जैसे काटो, मारो आदि के निषेध जैसे कुछ संस्कार शेष हैं। उपाध्याय ज्ञानसागर जी एवं कुछ श्वेताम्बर मुनियों के प्रयत्नों से सराक पुनः जैनधर्म की ओर लौटे हैं।

''दक्षिण में गया निर्ग्रन्थसंघ अपने साथ विपुल प्राकृत जैन साहित्य तो नहीं ले जा सका, क्योंकि उस काल तक जैनसाहित्य के अनेक ग्रन्थों की रचना ही नहीं हो पायी थी। वह अपने साथ श्रुतपरम्परा से कुछ दार्शनिक विचारों एवं महावीर के

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कठोर आचारमार्ग को ही लेकर चला था, जिसे उसने बहुत काल तक सुरक्षित रखा। **आज की दिगम्बरपरम्परा का पूर्वज यही दक्षिणी अचेल निर्ग्रन्थ संघ हैं।** --- दक्षिण का जलवायु उत्तर की अपेक्षा गर्म था, अतः अचेलता के परिपालन में दक्षिण में गये निर्ग्रन्थसंघ को कोई कठिनाई नहीं हुई, जब कि **उत्तर के निर्ग्रन्थसंघ में कुछ पार्श्वापत्यों के प्रभाव से और कुछ अति शीतल जलवायु के कारण यह अचेलता अक्षुण्ण नहीं रह सकी और एक वस्त्र रखा जाने लगा।** स्वभाव से भी दक्षिण की अपेक्षा उत्तर के निवासी अधिक सुविधावादी होते हैं। बौद्धधर्म में भी बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् सुविधाओं की माँग वात्सीपुत्रीय भिक्षुओं ने ही की थी, जो उत्तरी तराई क्षेत्र के थे। बौद्ध पिटकसाहित्य में निर्ग्रन्थों को एकशाटक और आजीवकों को नग्न कहा गया है। यह भी यही सूचित करता है कि **लज्जा और शीत निवारण हेतु उत्तर भारत का निर्ग्रन्थसंघ कम से कम एक वस्त्र तो रखने लग गया था।** मथुरा में ईस्वी सन् प्रथम शताब्दी के आसपास की जैनश्रमणों की जो मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें सभी में श्रमणों को कम्बल जैसे एक वस्त्र से युक्त दिखाया गया है। वे सामान्यतया नग्न रहते थे किन्तु भिक्षा या जनसमाज में जाते समय वह वस्त्र या कम्बल हाथ पर डालकर अपनी नग्नता छिपा लेते थे और अति शीत आदि की स्थिति में उसे ओढ़ भी लेते थे। 'आचारांग' के प्रथम श्रुतस्कंध के आठवें अध्ययन में अचेल श्रमणों के साथ-साथ एक, दो और तीन वस्त्र रखने वाले श्रमणों का उल्लेख है।

"यह सुनिश्चित है कि महावीर बिना किसी पात्र के दीक्षित हुए थे। 'आचारांग' से उपलब्ध सूचना के अनुसार पहले तो वे गृही-पात्र का उपयोग कर लेते थे, किन्तु बाद में उन्होंने इसका भी त्याग कर दिया और पाणिपात्र हो गये अर्थात् हाथ में ही भिक्षा ग्रहण करने लगे। सचित्त जल का प्रयोग निषिद्ध होने से सम्भवतः सर्वप्रथम निर्ग्रन्थसंघ में शौच के लिए जलपात्र का ग्रहण किया गया होगा, किन्तु भिक्षुओं की बढ़ती हुई संख्या और एक ही घर से प्रत्येक भिक्षु को पेट भर भोजन न मिल पाने के कारण आगे चलकर भिक्षा हेतु भी पात्र का उपयोग प्रारम्भ हो गया होगा। इसके अतिरिक्त बीमार और अतिवृद्ध भिक्षुओं की परिचर्या के लिए भी पात्र में आहार लाने और ग्रहण करने की परम्परा प्रचलित हो गई होगी। मथुरा में ईसा की प्रथम-द्वितीय शती की एक जैनश्रमण की प्रतिमा मिली है, जो अपने हाथ में एक पात्र-युक्त झोली और दूसरे में प्रतिलेखन (रजोहरण) लिए हुए है। इस झोली का स्वरूप आज श्वेताम्बरपरम्परा में, विशेषरूप से स्थानकवासी और तेरापंथी परम्परा में प्रचलित झोली के समान है। यद्यपि मथुरा के अंकनों में हाथ में खुला पात्र भी प्रदर्शित है। इसके अतिरिक्त मथुरा के अंकन में मुनियों एवं साध्वियों के हाथ में मुख-वस्त्रिका

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

(मुँह-पत्ति) और प्रतिलेखन (रजोहरण) के अंकन उपलब्ध होते हैं। प्रतिलेखन के अंकन दिगम्बरपरम्परा में प्रचलित मयूरपिच्छि और श्वेताम्बरपरम्परा में प्रचलित रजोहरण दोनों ही आकारों में मिलते हैं। यद्यपि स्पष्ट साहित्यिक और पुरातात्त्विक साक्ष्य के अभाव में यह कहना कठिन है कि वे प्रतिलेखन मयूरपिच्छि के बने होते थे या अन्य किसी वस्तु के। दिगम्बरपरम्परा में मान्य यापनीयग्रन्थ **मूलाचार** और **भगवती-आराधना** में प्रतिलेखन (पडिलेहण) और उसके गुणों का तो वर्णन है, किन्तु यह स्पष्ट उल्लेख नहीं है कि वे किस वस्तु के बने होते थे। इस प्रकार ईसा की प्रथम शती के पूर्व उत्तर भारत के निर्ग्रन्थसंघ में वस्त्र, पात्र, झोली, मुखवस्त्रिका और प्रतिलेखन (रजोहरण) का प्रचलन था। सामान्यतया मुनि नग्न ही रहते थे और साध्वियाँ साड़ी पहनती थीं। मुनि वस्त्र का उपयोग विशेष परिस्थिति में मात्र शीत एवं लज्जा-निवारण हेतु करते थे। मुनियों के द्वारा सदैव वस्त्रधारण किये रहने की परम्परा नहीं थी। इसी प्रकार अंकनों में मुखवस्त्रिका भी हाथ में ही प्रदर्शित है, न कि वर्तमान स्थानकवासी और तेरापंथी परम्पराओं के अनुरूप मुख पर बँधी हुई दिखाई गई है। प्राचीन स्तर के श्वेताम्बर-आगम-ग्रन्थ भी इन्हीं तथ्यों की पुष्टि करते हैं। श्वेताम्बरपरम्परा में मुनि के जिन १४ उपकरणों का उल्लेख मिला है, वे सम्भवतः ईसा की दूसरी-तीसरी शती तक निश्चित हो गये थे।'' (जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा / पृ. २५-२७)।

''कल्पसूत्र की स्थविरावली तुंगीयायन-गोत्रीय आर्य यशोभद्र के दो शिष्यों माढर-गोत्रीय सम्भूतिविजय और प्राची (पौर्वात्य)-गोत्रीय भद्रबाहु का उल्लेख करती है। 'कल्पसूत्र' में गणों और शाखाओं की उत्पत्ति बताई गई है, **जो एक ओर आर्य भद्रबाहु के शिष्य काश्यपगोत्रीय गोदास** से एवं दूसरी ओर स्थूलभद्र के शिष्य-प्रशिष्यों से प्रारम्भ होती है। **गोदास से गोदासगण की उत्पत्ति हुई और उसकी चार शाखाएँ ताम्रलिप्तिका, कोटिवर्षीया, पौण्ड्रवर्द्धनिका और दासीकर्पाटिका निकली हैं।** इसके पश्चात् भद्रबाहु की परम्परा कैसे आगे बढ़ी, इस सम्बन्ध में 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली में कोई निर्देश नहीं है। इन शाखाओं के नामों से भी ऐसा लगता है कि भद्रबाहु की शिष्यपरम्परा बंगाल और उड़ीसा से दक्षिण की ओर चली गई होगी। **दक्षिण में गोदासगण का एक अभिलेख भी मिला है। अतः यह मान्यता समुचित ही है कि भद्रबाहु की परम्परा से ही आगे चलकर दक्षिण की अचेलक निर्ग्रन्थ-परम्परा का विकास हुआ।**

''श्वेताम्बरपरम्परा पाटलिपुत्र की वाचना के समय भद्रबाहु के नेपाल में होने का उल्लेख करती है, जबकि दिगम्बरपरम्परा चन्द्रगुप्त मौर्य को दीक्षित करके उनके दक्षिण जाने का उल्लेख करती है। सम्भव है कि वे अपने जीवन के अन्तिम चरण में उत्तर से दक्षिण चले गये हों। उत्तरभारत के निर्ग्रन्थसंघ की परम्परा सम्भूतिविजय के प्रशिष्य स्थूलभद्र के शिष्यों से आगे बढ़ी। **'कल्पसूत्र' में वर्णित गोदासगण और**

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसकी उपर्युक्त चार शाखाओं को छोड़कर शेष सभी गणों, कुलों और शाखाओं का सम्बन्ध स्थूलभद्र की शिष्य-प्रशिष्य परम्परा से ही है। इसी प्रकार दक्षिण का अचेल निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु की परम्परा से और उत्तर का सचेल निर्ग्रन्थसंघ स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित हुआ।'' (वही / पृ.२८-२९)।

''ईसा की द्वितीय शती में महावीर के निर्वाण के छः सौ नौ वर्ष पश्चात् उत्तरभारत के निर्ग्रन्थसंघ में विभाजन की एक अन्य घटना घटित हुई, फलतः उत्तर-भारत का निर्ग्रन्थसंघ सचेल एवं अचेल ऐसे दो भागों में बँट गया। पार्श्वापत्यों के प्रभाव से आपवादिक रूप में एवं शीतादि के निवारणार्थ गृहीत हुए वस्त्रपात्र आदि जब मुनि की अपरिहार्य उपधि बनने लगे, तो परिग्रह की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोकने के प्रश्न पर आर्य कृष्ण और आर्य शिवभूति में मतभेद हो गया। आर्य कृष्ण जिनकल्प का उच्छेद बताकर गृहीत वस्त्र-पात्र को मुनिचर्या का अपरिहार्य अंग मानने लगे, जबकि आर्य शिवभूति ने इनके त्याग और जिनकल्प के आचारण पर बल दिया। उनका कहना था कि समर्थ के लिये जिनकल्प का निषेध नहीं मानना चाहिए। वस्त्र, पात्र का ग्रहण अपवाद मार्ग है, उत्सर्ग मार्ग तो अचेलता ही है। **आर्य शिवभूति की उत्तर भारत की इस अचेलपरम्परा को श्वेताम्बरों ने बोटिक (भ्रष्ट) कहा। किन्तु आगे चलकर यह परम्परा यापनीय के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।** गोपाञ्चल में विकसित होने के कारण यह गोप्यसंघ नाम से भी जानी जाती थी। 'षट्दर्शनसमुच्चय' की टीका में गुणरत्न ने गोप्यसंघ एवं यापनीयसंघ को पर्यायवाची बताया है। यापनीयसंघ की विशेषता यह थी कि एक ओर यह श्वेताम्बरपरम्परा के समान 'आचारांग', 'सूत्रकृतांग', 'उत्तराध्ययन', 'दशवैकालिक' आदि अर्द्धमागधी आगमसाहित्य को मान्य करता था, जो कि उसे उत्तराधिकार में ही प्राप्त हुआ था, साथ ही वह सचेल, स्त्री और अन्यतैर्थिकों की मुक्ति को स्वीकार करता था। आगमसाहित्य के वस्त्र-पात्र सम्बन्धी उल्लेखों को वह साध्वियों एवं आपवादिक स्थिति में मुनियों से सम्बन्धित मानता था, किन्तु दूसरी ओर वह दिगम्बर-परम्परा के समान वस्त्र और पात्र का निषेध कर मुनि की नग्नता पर बल देता था। यापनीय मुनि नग्न रहते थे और पाणितलभोजी (हाथ में भोजन करनेवाले) होते थे। इनके आचार्यों ने उत्तराधिकार में प्राप्त आगमों से गाथाएँ लेकर शौरसेनी प्राकृत में अनेक ग्रन्थ बनाये। इनमें 'कषायप्राभृत', 'षट्खण्डागम', 'भगवती आराधना', 'मूलाचार' आदि प्रसिद्ध हैं।

''दक्षिण भारत में अचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का इतिहास ईस्वी सन् की तीसरी-चौथी शती तक अन्धकार में ही है। इस सम्बन्ध में हमें न तो विशेष साहित्यिक साक्ष्य ही मिलते हैं और न अभिलेखीय ही। यद्यपि इस काल के कुछ पूर्व के ब्राह्मीलिपि के अनेक गुफा-अभिलेख तमिलनाडु में पाये जाते हैं, किन्तु वे श्रमणों या निर्माता

के नाम के अतिरिक्त कोई जानकारी नहीं देते। तमिलनाडु में अभिलेखयुक्त जो गुफायें हैं, वे सम्भवतः निर्ग्रन्थ के समाधिमरण ग्रहण करने के स्थल रहे होंगे। संगम युग के तमिलसाहित्य से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि जैनश्रमणों ने भी तमिल भाषा के विकास और समृद्धि में अपना योगदान दिया था। तिरूकुरल के जैनाचार्यकृत होने की भी एक मान्यता है। **ईसा की चौथी शताब्दी में तमिलदेश का यह निर्ग्रन्थसंघ कर्णाटक के रास्ते उत्तर की ओर बढ़ा, उधर उत्तर का निर्ग्रन्थसंघ सचेल (श्वेताम्बर) और अचेलक (यापनीय) इन दो भागों में विभक्त होकर दक्षिण में गया।**" (वही/ पृ. २९-३०)।

इन वक्तव्यों में डॉक्टर सा० ने निम्नलिखित मान्यताएँ प्रतिपादित की हैं—

१. **ईसापूर्व चौथी शती में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के नेतृत्व में जो निर्ग्रन्थ-श्रमणसंघ दक्षिण चला गया था, उसी का प्रतिनिधि आज का दिगम्बरसंघ है। अर्थात् दिगम्बरसंघ की स्थापना न तो बोटिक शिवभूति ने की थी, न आचार्य कुन्दकुन्द ने। वह भगवान् महावीर के उपदेशों का यथावत् अनुगामी मौलिक संघ है।**

२. दक्षिण-प्रवासी अचेल-निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु (चौथी शती ई० पू०) की परम्परा से विकसित हुआ था और उत्तरवासी सचेल श्रमणसंघ का विकास स्थूलभद्र (चौथी शती ई० पू०) की परम्परा से हुआ था।

३. पहले भगवान् महावीर के अनुयायी सभी मुनि नग्न और पाणिपात्रभोजी होते थे। संघ-विभाजन के पश्चात् एकमात्र भद्रबाहुनीत दक्षिणप्रवासी निर्ग्रन्थश्रमणसंघ ही नग्न और पाणिपात्रभोजी बना रहा। स्थूलभद्रनीत उत्तरभारतवासी श्रमणसंघ शीतल जलवायु की पीड़ा से बचने के लिए वस्त्रधारण करने लगा और भिक्षुओं की बढ़ती संख्या के कारण एक घर से पर्याप्त भिक्षा न मिल पाने से अनेक घरों से भिक्षा प्राप्त करने के लिए पात्र रखने लगा। **इस प्रकार दिगम्बर-परम्परा मौलिक है और श्वेताम्बरपरम्परा विकसित।**

४. भद्रबाहुनीत अचेल निर्ग्रन्थसंघ दक्षिण चला गया था और उत्तरभारत-स्थित स्थूलभद्रनीत श्रमणसंघ सचेल हो गया था, **अतः सचेलाचेलसंघ का अस्तित्व भारत के किसी भी कोने में नहीं था।**

५. वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद स्थूलभद्रानुयायी श्वेताम्बरसंघ से यापनीयसंघ का उद्भव हुआ। अतः श्वेताम्बर और यापनीय दोनों सम्प्रदायों की उत्पत्ति एक ही परम्परा से नहीं हुई। स्थूलभद्रानुयायी श्वेताम्बरसम्प्रदाय का जन्म उस मूल निर्ग्रन्थसंघ से हुआ था, जिस का प्रतिनिधि श्रुतकेवली भद्रबाहु का अनुयायी निर्ग्रन्थसंघ था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

डॉक्टर सा० की इन मान्यताओं में केवल दो मान्यताएँ क्रमशः इतिहास-सम्मत और आगमसम्मत नहीं हैं। यापनीयसंघ का जन्म वी० नि० सं० ६०९ (ई० सन् ८२/ डॉ० सा० के अनुसार ई० सन् १४२) में हुआ था, यह मान्यता इतिहास-सम्मत नहीं है। वस्तुतः उसकी उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुई थी। डॉक्टर सा० ने स्वयं पूर्व में यही माना है। इसके प्रमाण सप्तम अध्याय (प्र.१ / शी० १०) में द्रष्टव्य हैं। तथा मथुराशिल्प में मूर्तित साधुओं का वेश आचारांगोक्त साधुवेश के अनुरूप है, यह मान्यता आगम-सम्मत नहीं है। वास्तविकता यह है कि आचारांग में एक, दो या तीन प्रावरण धारण करने का विधान शीतपरीषह-निवारण के लिए किया गया है, लज्जानिवारण के लिए नहीं। लज्जानिवारण के लिए कटिबन्धन (चोलपट्ट) पहनने की आज्ञा दी गई है। (देखिए/अध्याय ३/ प्रकरण १/ शीर्षक ६)। मथुराशिल्प में मूर्तित साधु लज्जानिवारण के लिए हाथ पर वस्त्र या कम्बल लटकाये हुए है, उसका कटिप्रदेश कटिबन्धन (चोलपट्ट) से वेष्टित नहीं है, अपितु नग्न है। यह वेश आचारांगोक्त साधुवेश के विरुद्ध है। शेष सभी मन्तव्य इतिहास-सम्मत हैं, केवल इतना संशोधन आवश्यक है कि दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद जम्बूस्वामी के निर्वाण के अनन्तर ही हो गया था। श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में मूलनिर्ग्रन्थसंघ में दूसरी बार विभाजन हुआ था और तब अर्धफालक-सम्प्रदाय की उत्पत्ति हुई थी, जो ईसा की द्वितीय शताब्दी तक विद्यमान रहा, पश्चात् श्वेताम्बरसम्प्रदाय में विलीन हो गया।

उपर्युक्त वक्तव्यों में प्रकट की गयी अन्य मान्यताएँ, जैसे षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों के कर्त्ता यापनीय-आचार्य थे, पूर्ववत् ही हैं। उनका निरसन उत्तरवर्ती अध्यायों में किया जायेगा।

डॉ० सागरमल जी का यह अन्तिम निर्णय कि आज की दिगम्बरपरम्परा का पूर्वज (श्रुतकेवली भद्रबाहुनीत) दक्षिणी अचेल निर्ग्रन्थसंघ है, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ में प्रकट की गयीं उनकी दिगम्बरमत-विरोधी अनेक मान्यताएँ स्वतः निरस्त हो जाती हैं। इसका प्रदर्शन यथास्थान किया जायेगा।

✧✧✧

तृतीय प्रकरण

श्वेताम्बरसाहित्य का विकास

डॉ० सागरमल जी ने अपने नवीन ग्रन्थ **'जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा'** में श्वेताम्बरसाहित्य के विकास पर भी प्रकाश डाला है, जिससे ज्ञात होता है कि श्वेताम्बरमान्य आचारांग आदि सभी आगम ईसापूर्व की रचनाएँ नहीं हैं, समवायांग जैसे आगमग्रन्थ तो ईसा की पाँचवीं शती में रचे गये हैं। **इनकी रचना के कालक्रम का ज्ञान डॉक्टर सा० की अनेक कपोलकल्पित मान्यताओं के निरसन में उपयोगी है,** अत: श्वेताम्बरसाहित्य के विकास पर प्रकाश डालनेवाले उनके वचन नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं। वे लिखते हैं—

''महावीर के निर्वाण के पश्चात् से लेकर ईसा की पाँचवीं शती तक एक हजार वर्ष की इस सुदीर्घ अवधि में अर्द्धमागधी आगमसाहित्य का निर्माण एवं संकलन होता रहा है। अत: आज हमें जो आगम उपलब्ध हैं, वे न तो एक व्यक्ति की रचना हैं और न एक काल की। मात्र इतना ही नहीं, एक ही आगम में विविध कालों की सामग्री संकलित हैं। इस अवधि में सर्वप्रथम ई० पू० तीसरी शती में पाटलिपुत्र में प्रथम वाचना हुई, सम्भवत: इस वाचना में अंगसूत्रों एवं पार्श्वापत्यपरम्परा के पूर्व-साहित्य के ग्रन्थों का संकलन हुआ। पूर्वसाहित्य के संकलन का प्रश्न इसलिये महत्त्वपूर्ण बन गया था कि पार्श्वापत्य-परम्परा लुप्त होने लगी थी। इसके पश्चात् आर्य स्कन्दिल की अध्यक्षता में मथुरा में और आर्य नागार्जुन की अध्यक्षता में वल्लभी में समानान्तर वाचनाएँ हुईं, जिनमें अंग, उपांग आदि आगम संकलित हुए। इसके पश्चात् वीर निर्वाण ९८० अर्थात् ई० सन् की पाँचवीं शती में वल्लभी में देवर्द्धिक्षमाश्रमण के नेतृत्व में अन्तिम वाचना हुई। वर्तमान आगम इसी वाचना का परिणाम हैं। फिर भी देवर्द्धि इन आगमों के सम्पादक ही हैं, रचनाकार नहीं। उन्होंने मात्र ग्रन्थों को सुव्यवस्थित किया। इन ग्रन्थों की सामग्री तो उनके पहले की है। अर्धमागधी आगमों में जहाँ 'आचारांग' एवं 'सूत्रकृतांग' के प्रथम श्रुतस्कध, 'ऋषिभाषित', 'उत्तराध्ययन', 'दशवैकालिक' आदि प्राचीन स्तर के अर्थात् ई० पू० के ग्रन्थ हैं, वहीं 'समवायांग', वर्तमान 'प्रश्नव्याकरण' आदि पर्याप्त परवर्ती अर्थात् लगभग ई० स० की पांचवीं शती के हैं। 'स्थानांग', 'अंतकृद्दशा', 'ज्ञाताधर्मकथा' और 'भगवती' का कुछ अंश प्राचीन (अर्थात् ई० पू० का) है, तो कुछ पर्याप्त परवर्ती है। उपांगसाहित्य में अपेक्षाकृत रूप में 'सूर्यप्रज्ञप्ति', 'राजप्रश्नीय', 'प्रज्ञापना' प्राचीन हैं। उपांगों की अपेक्षा भी छेद-सूत्रों की प्राचीनता निर्विवाद है। इसी प्रकार प्रकीर्णक साहित्य में अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं, जो कुछ अंगों और उपांगों की अपेक्षा भी प्राचीन हैं। फिर भी सम्पूर्ण अर्धमागधी आगमसाहित्य को

अन्तिम रूप लगभग ई० सन् की छठी शती के पूर्वार्ध में मिला, यद्यपि इसके बाद भी इसमें कुछ प्रक्षेप और परिवर्तन हुए हैं। ईसा की छठी शताब्दी के पश्चात् से दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य तक मुख्यतः आगमिक व्याख्या साहित्य के रूप में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी और टीकाएँ लिखी गईं। यद्यपि कुछ निर्युक्तियाँ प्राचीन भी हैं। इस काल में इन आगमिक व्याख्याओं के अतिरिक्त स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे गये।''(जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा / पृ.३१)।

निर्णीतार्थ

प्रस्तुत अध्याय में उपस्थित किये गये उपर्युक्त प्रमाणों से निम्नलिखित बातें सिद्ध होती हैं—

१. जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद भगवान् महावीर के अनुयायी एकान्त-अचेलमुक्तिवादी निर्ग्रन्थसंघ या अचेलसंघ से 'श्वेतपट' नामक सग्रन्थसंघ या सचेल-संघ का उद्भव हुआ था। उसके श्वेतपट, श्वेतवस्त्र, सिताम्बर या श्वेताम्बर नाम से प्रसिद्ध होने के कारण निर्ग्रन्थसंघ भी आगे चलकर 'दिगम्बरसंघ' के नाम से व्यपदिष्ट होने लगा। इससे सिद्ध है कि दिगम्बरसंघ निर्ग्रन्थसंघ के नाम से जम्बूस्वामी के पूर्व विद्यमान था। अतः बोटिक शिवभूति से वीर नि० सं० ६०९ में अथवा आचार्य कुन्दकुन्द से विक्रम की छठी शती (पाँचवीं शती ई०) में दिगम्बरसम्प्रदाय की उत्पत्ति बतलाना सत्य का घोर अपलाप है।

२. अचेलक धर्म के अनुयायी अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु बारह हजार शिष्यों के साथ उत्तरभारत से दक्षिणभारत गये थे, इससे सूचित होता है कि वहाँ दिगम्बरजैनमत के अनुयायी पहले से ही विद्यमान थे, अन्यथा बारह हजार दिगम्बरमुनियों की आहारचर्या वहाँ संभव नहीं थी। इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बरपरम्परा अतिप्राचीन है।

३. जम्बूस्वामी के निर्वाणानन्तर निर्ग्रन्थसंघ के भेद (विभाजन) से श्वेताम्बर-सम्प्रदाय का जन्म हुआ था। तत्पश्चात् श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में पुनः उसके (निर्ग्रन्थसंघ के) ही भेद से अर्धफालकसंघ की उत्पत्ति हुई। इनके अतिरिक्त निर्ग्रन्थसंघ के भेद से अन्य किसी भी सवस्त्रमुक्ति एवं स्त्रीमुक्ति के समर्थक संघ की उत्पत्ति का उल्लेख साहित्य या शिलालेखों में उपलब्ध नहीं है। सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति के विरोधी दिगम्बरसंघ की उत्पत्ति निर्ग्रन्थसंघ के भेद से नहीं हुई थी, क्योंकि वह तो निर्ग्रन्थसंघ का ही नामान्तर है, जो भगवान् महावीर के समय से चला आ रहा है। यापनीयसंघ की उत्पत्ति श्वेताम्बरसंघ के भेद से हुई थी, इसका उल्लेख हरिषेण के 'बृहत्कथाकोश' एवं रत्ननन्दीकृत 'भद्रबाहुचरित' में मिलता है। स्वयं डॉ० सागरमल जी ने उसे उत्तरभारत के निर्ग्रन्थसंघ से विभक्त हुआ मानकर यह मान लिया है कि

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसकी उत्पत्ति श्वेताम्बरसंघ से ही हुई थी, क्योंकि उन्होंने स्थूलभद्रनीत सचेलसंघ को ही उत्तरभारत का निर्ग्रन्थसंघ कहा है। अतः उनकी 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ में प्रतिपादित यह पूर्व मान्यता अप्रामाणिक है कि भगवान् महावीर का अनुयायी मूल निर्ग्रन्थसंघ सचेलाचेलमार्गी था और उसके भेद से श्वेताम्बर और यापनीय संघों का उद्भव हुआ था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सप्तम अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सप्तम अध्याय

यापनीयसंघ का इतिहास

प्रथम प्रकरण

यापनीयसंघ का स्वरूप

इस सम्प्रदाय का परिचय देते हुए पं० नाथूराम जी प्रेमी लिखते हैं—"जैनधर्म के दो सम्प्रदाय हैं : दिगम्बर और श्वेताम्बर। इन दोनों के अनुयायी लाखों हैं और साहित्य भी विपुल है, इसलिए इनके मतों और मतभेदों से साधारणत: सभी परिचित हैं, परन्तु इस बात का बहुत ही कम लोगों को पता है कि इन दो के अतिरिक्त एक तीसरा सम्प्रदाय भी था, जिसे **यापनीय, आपुलीय** या **गोप्य** संघ कहते थे और जिसका इस समय एक भी अनुयायी नहीं है। --- किसी समय यह सम्प्रदाय कर्नाटक और उसके आस-पास बहुत प्रभावशाली रहा है। कदम्ब, राष्ट्रकूट और दूसरे वंशों के राजाओं ने इस संघ को और इसके साधुओं को अनेक भूमिदान किये थे। **हरिभद्र** ने अपनी **ललितविस्तरा** में **यापनीयतंत्र** का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है।" (जै.सा.इ./द्वि.सं./पृ.५६)।

१
सिद्धान्त और आचार

१६वीं शती ई० के भट्टारक **रत्ननन्दी** (रत्नकीर्ति) ने **भद्रबाहुचरित** में यापनीयों के सिद्धान्त और आचरण के विषय में लिखा है कि वे वेश (लिंग) तो दिगम्बरों का धारण करते थे, लेकिन आचार श्वेताम्बरों का पालन करते थे—"**धृतं दिग्वाससां रूपमाचार: सितवाससाम्।**" (श्लोक ४/१५३)। इससे स्पष्ट होता है कि **यापनीय साधुओं का केवल वेश दिगम्बरसाधुओं जैसा होता था, जैसे वे नग्न रहते थे, मयूरपिच्छी रखते थे और पाणितल में भोजन लेकर करते थे, लेकिन शेष सम्पूर्ण आचरण श्वेताम्बरसाधुओं के समान था।** अर्थात् संभवत: उनके ही समान अनेक बार आहार-जल लेते थे, बैठकर भोजन करते थे, शीतादिनिवारणार्थ कम्बल या चादर ओढ़ते थे, अर्श-भगन्दर आदि रोग हो जाने पर वस्त्रादि का उपयोग करते थे[१] तथा

१. क—अर्शो-भगन्दरादिषु गृहीतचीरो यतिर्न मुच्येत।
अपसर्गे वा चीरे ग्दादि: संन्यस्यते चात्ते॥ १७॥ शाकटायन : स्त्रीनिर्वाणप्रकरण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

सभी श्वेताम्बर आगमों एवं उनमें प्रतिपादित सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि सिद्धान्तों को मानते थे।

आचार्य श्री हस्तीमल जी भी लिखते हैं—"दिगम्बराचार्य रत्ननन्दी ने 'भद्रबाहुचरित' नामक अपनी रचना में उल्लिखित '**धृतं दिग्वाससां रूपमाचारः सितवाससाम्**' इस श्लोकार्द्ध से यह स्वीकार किया है कि यापनीयसंघ के साधु-साध्वियों और आचार्यों आदि का आचार-विचार श्वेताम्बर-परम्परा के साधु-साध्वियों के अनुरूप था। इससे यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि यापनीयपरम्परा की मान्यताएँ अधिकांश में श्वेताम्बरपरम्परा की मान्यताओं से मिलती-जुलती थीं।" (जै.ध.मौ.इ. / भा.३ / पृ. २१२)।

श्वेताम्बराचार्य श्री गुणरत्नसूरि (१४वीं शती ई०) ने यापनीयों के आचार का वर्णन करते हुए लिखा है कि **वे नग्न रहते हैं, पाणिपात्र में भोजन करते हैं, मयूरपिच्छी रखते हैं, वन्दना किये जाने पर 'धर्मलाभ हो' यह आशीर्वाद देते हैं तथा स्त्रियों की मुक्ति और केवलिभुक्ति मानते हैं। उनका दूसरा नाम गोप्य भी है।**[२]

यापनीयतन्त्र नामक ग्रन्थ में स्त्रीमुक्ति के समर्थन में जो युक्तियाँ दी गयी हैं, उन्हें श्री हरिभद्रसूरि (८वीं शती ई०) ने **ललितविस्तरा** (गाथा ३ / पृ. ४०२) में उद्धृत किया है। इससे यापनीयों की स्त्रीमुक्ति-मान्यता की पुष्टि होती है।

श्रुतसागरसूरि (१५वीं शती ई०) लिखते हैं—"**यापनीय खच्चरों के समान हैं। वे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों मतों को मानते हैं। वे रत्नत्रय की पूजा करते हैं और कल्पसूत्र का वाचन भी करते हैं। वे कहते हैं कि स्त्रियों का तद्भवमोक्ष होता है, केवली भगवान् कवलाहार करते हैं, तथा परशासन माननेवाले सग्रन्थ की मुक्ति होती है।**"[३]

पं० नाथूराम जी प्रेमी ने इन उल्लेखों के आधार पर लिखा है—"ललितविस्तरा के कर्त्ता हरिभद्रसूरि, षड्दर्शनसमुच्चय के टीकाकार गुणरत्नसूरि और षट्प्राभृत के व्याख्याता

ख—**स्त्रीनिर्वाणप्रकरण** एवं **केवलिभुक्तिप्रकरण** के रचयिता शाकटायन का वास्तविक नाम पाल्कीर्ति था। (देखिये, आगे पादटिप्पणी १५९)।

२. "दिगम्बराः पुनर्नाग्न्यलिङ्गाः पाणिपात्राश्च। ते चतुर्धा काष्ठासङ्घ-मूलसङ्घ-माथुरसङ्घ-गोप्यसङ्घभेदात्। --- गोप्या मायूरपिच्छिका। --- गोप्यास्तु वन्द्यमाना धर्मलाभं भणन्ति, स्त्रीणां मुक्तिं केवलिनां भुक्तिं च मन्यन्ते। गोप्या यापनीया इत्यप्युच्यन्ते।" त.र.दी. / षड्दर्शनसमुच्चय / चतुर्थ अधिकार / पृष्ठ १६१।

३. "यापनीयास्तु वेसरा गर्दभा इवोभयं मन्यन्ते, रत्नत्रयं पूजयन्ति, कल्पं च वाचयन्ति, स्त्रीणां तद्भवे मोक्षं, केवलिजिनानां कवलाहारं, परशासने सग्रन्थानां मोक्षं च कथयन्ति।" श्रुतसागर-टीका / दंसणपाहुड / गाथा ११।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्रुतसागर सूरि के अनुसार यापनीयसंघ के मुनि नग्न रहते थे, मोर की पिच्छी रखते थे, पाणितलभोजी थे, नग्नमूर्तियाँ पूजते थे और वन्दना करनेवाले श्रावकों को 'धर्मलाभ' देते थे। ये सब बातें तो दिगम्बरियों जैसी थीं, परन्तु साथ ही वे मानते थे कि स्त्रियों को उसी भव में मोक्ष हो सकता है, केवली भोजन करते हैं और सग्रन्थावस्था और परशासन से भी मुक्ति होना संभव है। इसके सिवाय शाकटायन की अमोघवृत्ति के कुछ उदाहरणों से मालूम होता है कि **यापनीयसंघ में आवश्यक, छेदसूत्र, निर्युक्ति और दशवैकालिक आदि ग्रन्थों का पठन-पाठन होता था, अर्थात् इन बातों में वे श्वेताम्बरियों के समान थे।**" (जै. सा. इ. / प्र. सं. / पृ. ४४)।

यापनीय-सम्प्रदाय दिगम्बरलिंग (जिनकल्प) एवं श्वेताम्बरमान्य सवस्त्रलिंग (स्थविरकल्प) दोनों से मुक्ति मानता था। यापनीय-आचार्य पाल्यकीर्ति शाकटायन **स्त्रीनिर्वाणप्रकरण** (कारिका १६) में लिखते हैं कि जैसे स्थविरकल्पी (वस्त्रधारी) मुनियों को मोक्ष होता है, वैसे ही वस्त्रत्याग न करनेवाली स्त्रियों को भी संभव है। (देखिये, अध्याय १५ / प्रकरण १ / शीर्षक २)। पाल्यकीर्ति ने स्त्रीमुक्ति के समर्थन में दिगम्बरमान्य वेदवैषम्य को अमान्य किया है। उनकी वेदवैषम्य-विरोधी युक्तियों का प्ररूपण अध्याय ११ / प्रकरण ५ / शीर्षक १ में अवलोकनीय है।

इस मिलावटी चरित्र के ही कारण इन्द्रनन्दी (११ वीं शती ई०) ने **नीतिसार** में यापनीयों को पाँच जैनाभासों में परिगणित किया है—

गोपुच्छिकः श्वेतावासा द्राविडो यापनीयकः।
निःपिच्छिकश्चेति पञ्चैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः॥ १०॥

ये जैनाभास तीर्थंकरों की नग्न मूर्तियाँ प्रतिष्ठित करते थे। श्रुतसागरसूरि ने लिखा है—

"**या पञ्चजैनाभासैरञ्चलिकारहितापि नग्नमूर्तिरपि प्रतिष्ठिता सा न वन्दनीया, न चार्चनीया। या तु जैनाभासरहितैः साक्षादार्हतसङ्घैः प्रतिष्ठिता चक्षुःस्तनादिषु विकाररहिता नन्दिसङ्घ-सेनसङ्घ-देवसङ्घ-सिंहसङ्घे समुपन्यस्ता सा वन्दनीया।**" (टीका / बोधपाहुड / गा.१०)।

अनुवाद—"पाँच जैनाभासों द्वारा जो लँगोटीरहित नग्नमूर्ति भी प्रतिष्ठित की जाती है, वह न वन्दनीय है, न पूजनीय। जो जैनाभासत्वरहित साक्षात् आर्हतसंघ के नन्दिसंघ, सेनसंघ, देवसंघ एवं सिंहसंघ के द्वारा चक्षु-स्तन आदि में विकाररहित मूर्ति प्रतिष्ठित की जाती है, वह वन्दनीय है।"

श्रुतसागरसूरि के इस कथन से मालूम होता है कि यापनीयों द्वारा प्रतिष्ठित जिन-प्रतिमाएँ नग्न होती थीं।

अचेलकता-सचेलकता दोनों के पक्षधर—डॉ० सागरमल जी का कथन है कि उत्तरभारत की सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा से अचेलता के पक्षधर यापनीयसंघ और सचेलता के पक्षधर श्वेताम्बरसंघ का उद्भव हुआ था। (जै.ध.या.स./पृ.२४)। यह कथन भ्रमोत्पादक है। यापनीयसंघ अचेलता और सचेलता दोनों का पक्षधर था, बल्कि अचेलता से अधिक सचेलता का पक्षधर था। स्त्रीमुक्ति की जैसी वकालत यापनीयग्रन्थ **स्त्री-निर्वाणप्रकरण** और **यापनीयतन्त्र** में की गई है, वैसी श्वेताम्बरग्रन्थों में भी नहीं मिलती। श्री हरिभद्रसूरि ने **ललितविस्तरा** में स्त्रीमुक्ति के समर्थन में **यापनीयतन्त्र** के ही तर्क उद्धृत किये हैं। सवस्त्रमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और परतीर्थिकमुक्ति का भी यापनीयसम्प्रदाय में उतना ही समर्थन किया गया है, जितना श्वेताम्बरसम्प्रदाय में। किन्तु जब सवस्त्रमुक्ति संभव है, तब अचेलता की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान किसी भी यापनीयग्रन्थ में नहीं मिलता। तात्पर्य यह कि यापनीयसम्प्रदाय में युक्तिवाद के द्वारा सचेलता का तो औचित्य सिद्ध किया गया है, किन्तु अचेलता का नहीं। इससे स्पष्ट है कि यापनीयमत सिद्धान्ततः सचेलता का ही पक्षधर था, अचेलता तो उसमें केवल लौकिक प्रयोजनवश स्वीकार की गई थी। इसका स्पष्टीकरण आगे द्रष्टव्य है।

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—"यापनीयों की मान्यता है कि अचेलता ही श्रेष्ठ मार्ग है, किन्तु आपवादिक स्थितियों में मुनि वस्त्र रख सकता है। (जै.ध.या.सं./पृ.४३१)। उसकी (यापनीयमत की) दृष्टि में अचेलकत्व (नग्नत्व) उत्सर्गमार्ग है और सचेलकत्व अपवादमार्ग।" (जै.ध.या.स./पृ.४३२)। इसके समर्थन में लेखक ने '**भगवती-आराधना**' को यापनीयग्रन्थ मानते हुए उसकी "**उस्सग्गियलिंगकदस्स**" गाथा (७६) उद्धृत की है। किन्तु 'भगवती-आराधना' यापनीयग्रन्थ नहीं, अपितु दिगम्बरग्रन्थ है, यह आगे 'भगवती-आराधना' नाम के अध्याय में सिद्ध किया जायेगा। इससे स्पष्ट है कि उपर्युक्त मान्यता किसी यापनीयग्रन्थ से समर्थित नहीं है। वस्तुतः यापनीयमत में उत्सर्ग-अपवाद का भेद ही नहीं मिलता, अपितु अचेलता और सचेलता दोनों को वैकल्पिक (ऐच्छिक) रूप में मान्यता दी गई है। (देखिये, अध्याय १४/प्र. २/शी. १.५, १.६., १.९ एवं १.१०)। अतः यह सिद्ध नहीं होता कि यापनीयसंघ अचेलता का पक्षधर था। वस्तुतः वह दोनों को समान महत्त्व देता था। अतः वह सचेलाचेलमार्गी था।

२

बोटिक शिवभूति यापनीयमत का प्रवर्तक नहीं

द्वितीय अध्याय में मुनि कल्याणविजय जी, पं० दलसुखभाई मालवणिया और डॉ० सागरमल जैन के कथन उद्धृत किए गये हैं, जिनमें उन्होंने कहा है कि बोटिक शिवभूति ने वीरनिर्वाण सं० ६०९ (सन् ८२ ई०) में यापनीयमत का प्रवर्तन किया

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

था। पहले इसका नाम बोटिकमत पड़ा, फिर मूलगण या मूलसंघ, तदनन्तर 'यापनीय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर डॉ० सागरमल जी ने यापनीयमत का उत्पत्तिकाल ईसा की पाँचवीं शती मान लिया। (देखिये, अध्याय २ / प्र.२ / शी. ६.५ एवं प्र. ३ / शी. १)।

किन्तु, द्वितीय अध्याय में युक्ति-प्रमाणपूर्वक सिद्ध किया जा चुका है कि बोटिक शिवभूति ने, न दिगम्बरमत का प्रवर्तन किया था, न यापनीयमत का, अपितु उसने श्वेताम्बरमत छोड़कर भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत सर्वथा अचेलमार्गी दिगम्बरमत अपनाया था। 'आवश्यक मूलभाष्य' आदि के कर्त्ताओं ने दिगम्बरमत को ही 'बोटिकमत' शब्द से अभिहित किया है।

३
श्वेताम्बरसंघ से यापनीयसंघ की उत्पत्ति

श्वेताम्बरसाहित्य से यापनीयसंघ के उद्गम, समय और प्रवर्तक-पुरुष के विषय में कोई सूचना प्राप्त नहीं होती। दिगम्बरसाहित्य से ही इन बातों की कुछ जानकारी मिलती है।

बृहत्कथाकोशकार **आचार्य हरिषेण** (ई. सन् ९३१) ने **बृहत्कथाकोश** के **भद्रबाहुकथानक** में शिथिलाचारी निर्ग्रन्थ साधुओं से **अर्धफालकसंघ**[४] की उत्पत्ति, उससे **श्वेताम्बरसंघ** का उदय तथा श्वेताम्बरसंघ से **यापनीयसंघ** के जन्म की कथा का वर्णन किया है। इसका विस्तार से निरूपण षष्ठ अध्याय में किया जा चुका है।

देवसेनसूरि (९३३ ई०) ने अपने ग्रंथ **दर्शनसार** में लिखा है कि विक्रमसंवत् २०५ में कल्याणनगर में श्रीकलश नामक श्वेताम्बर मुनि से यापनीयसंघ उत्पन्न हुआ—

कल्लाणे वरणयरे दुण्णिसए पंच उत्तरे जादे।
जावणिय-संघभावो सिरिकलसादो हु सेवडदो॥ २९॥

रत्ननन्दी ने भद्रबाहुचरित में यापनीयसंघ की उत्पत्ति पर प्रकाश डालनेवाली निम्न घटना का वर्णन किया है—करहाटक नामक नगर में राजा भूपाल राज्य करते थे। उनकी नृकुलदेवी नाम की प्रिय रानी थी। एक बार रानी ने अपने पति से कहा कि मेरे पितृनगर में मेरे कुछ गुरुजन (मुनिगण) पधारे हैं। धर्मप्रभावना के लिए आप

---

४. बायें हाथ पर अर्धवस्त्रखण्ड लटकाकर चलनेवाले साधु अर्धफालकधारी कहलाते थे। (बृहत्कथाकोश / भद्रबाहुकथानक / श्लोक ५८)। देखिए , अध्याय ६ / प्रकरण १/ शीर्षक ६।

उन्हें भक्तिपूर्वक यहाँ बुलवायें। राजा ने बुद्धिसागर नाम के मंत्री को गुरुओं के पास भेजा। वह विनयपूर्वक उन्हें करहाटक ले आया। राजा ठाठ-बाट से अगवानी के लिए गया। पर उसने दूर से देखा कि ये तो दिगम्बर साधु नहीं हैं। ये तो सवस्त्र हैं और इनके हाथ में भिक्षापात्र और लाठी है। ये कौन से साधु हैं? निर्ग्रन्थतारहित यह कौन सा मत है? राजा ने उनके पास जाना उचित नहीं समझा। वह घर लौट आया और रानी से बोला—"जिनमत के विरुद्ध चलनेवाले, परिग्रहपिशाच के वशीभूत ये ही तुम्हारे गुरु हैं? मैं इन्हें नहीं मानूँगा।"

रानी राजा का आशय समझ गई। वह तुरन्त गुरुओं के पास गई और प्रार्थना की, कि वे वस्त्रादि का त्याग कर निर्ग्रन्थ वेश धारण कर लें। साधुओं ने रानी का अनुरोध स्वीकार कर तुरन्त वस्त्रादि का त्याग कर दिया और पीछी-कमण्डलु लेकर दिगम्बरमुद्रा में राज्य में प्रवेश किया। तब राजा भूपाल ने जाकर बड़े ठाठ-बाट से उनकी अगवानी की और उन्हें नगर में ले आया।

"इस तरह राजा आदि के द्वारा पूजित और सम्मानित होने पर उन्होंने रूप तो दिगम्बर साधुओं का धारण कर लिया, किन्तु उनका श्रद्धान और आचरण श्वेताम्बर साधुओं के ही समान बना रहा। गुरुदीक्षा के बिना उन्होंने जो दिगम्बरलिंग धारण किया था, वह नट के रूप के समान उपहासास्पद बन गया। (भद्रबाहुचरित ४/१३७-१५३)। आगे चलकर इन्हीं साधुओं से यापनीयसंघ का प्रादुर्भाव हुआ। भद्रबाहुचरित से कथा का प्रासंगिक संस्कृत मूल नीचे दिया जा रहा है—

अन्यदावसरं प्राप्य राज्ञ्या विज्ञापितो नृपः।
स्वामिन्मद्गुरवः सन्ति गुरवोऽस्मत्पितुः पुरे॥ ४ /१४०॥

आनाययत तान्भक्त्या धर्मकर्माभिवृद्धये।
निशम्य तद्वचो भूभृदाहूयामात्यमञ्जसा॥ ४ /१४१॥

बुद्धिसागरनामानमप्रैषील्लातुमादरात्।
आसाद्यासौ गुरून् भक्त्या प्रवरप्रश्रयान्वितः॥ ४ /१४२॥

भूयोऽभ्यर्थनयामात्यः पत्तनं निजमानयत्।
निशम्यागमनं तेषां मुदमाप परं नृपः॥ ४ /१४३॥

महताडम्बरेणासावचालीद्वन्दितुं गुरून्।
दूरादालोक्य तान्साधून्दध्यादिति सुविस्मयात्॥ ४ /१४४॥

अहो निर्ग्रन्थताशून्यं किमिदं नौतनं मतम्।
न मेऽत्र युज्यते गन्तुं पात्रदण्डादिमण्डितम्॥ ४ /१४५॥

श्री दिगम्बर जैन परवाड़सभा पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

व्याघुट्य भूपतिस्तस्मादागत्य निजमन्दिरम्।
भाषते स्म महादेवीं गुरवस्ते कुमार्गगाः॥ ४ /१४६॥

जिनोदितबहिर्भूत-दर्शनाश्रितवृत्तयः।
परिग्रहग्रहग्रस्तान्नैतान्मन्यामहे वयम्॥ ४/१४७॥

सा तु मनोगतं राज्ञो ज्ञात्वाऽगाद्गुरुसन्निधिम्।
नत्वा विज्ञापयामास विनयानतमस्तका॥ ४ /१४८॥

भगवन्मदाग्रहादग्र्यां गृह्णीतामरपूजिताम्।
निर्ग्रन्थपदवीं पूतां हित्वा सङ्गं मुदाऽखिलम्॥ ४ /१४९॥

उररीकृत्य ते राज्ञ्या वचनं विदुषार्चितम्।
तत्यजुः सकलं सङ्गं वसनादिकमञ्जसा॥ ४ /१५०॥

करे कमण्डलुं कृत्वा पिच्छिकां च जिनोदिताम्।
जग्रहुर्जिनमुद्रां ते धवलांशुकधारिणः॥ ४ /१५१॥

विशांपतिस्ततो गत्वाऽभिमुखं भूरिसम्भ्रमात्।
नत्वातिभक्तितः साधून्मध्येपत्तनमानयत्॥ ४ /१५२॥

तदातिवेलं भूपाद्यैः पूजिता मानिताश्च तैः।
धृतं दिग्वाससां रूपमाचारः सितवाससाम्॥ ४ /१५३॥

गुरुशिक्षातिगं लिङ्गं नटवद्भण्डिमास्पदम्।
ततो यापनसङ्घोऽभूत्तेषां कापथवर्तिनाम्॥ ४ /१५४॥

इस कथा में भी श्वेताम्बरसंघ से ही यापनीयसंघ की उत्पत्ति बतलायी गई है।

४

उत्तरभारत की सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा काल्पनिक

डॉ० सागरमल जी इस मत पर आपत्ति उठाते हुए कहते हैं—"रत्ननन्दी का यह मत पूर्णतः प्रामाणिक नहीं है। यापनीयों की उत्पत्ति श्वेताम्बर-परम्परा से न होकर उस मूलधारा से हुई है, जो श्वेताम्बर-परम्परा की भी पूर्वज थी, जिससे कालक्रम से वर्तमान श्वेताम्बरधारा का विकास हुआ है। वस्तुतः महावीर के धर्मसंघ में जब वस्त्रपात्रादि में वृद्धि होने लगी और अचेलकत्व की प्रतिष्ठा क्षीण होने लगी, तब उससे अचेलता के पक्षधर यापनीय और सचेलता के पक्षधर श्वेताम्बर ऐसी दो धाराएँ निकलीं। पुनः यापनीय-सम्प्रदाय का जन्म दक्षिण में न होकर उत्तरभारत में हुआ।"(जै. ध. या. स. / पृ.२३-२४)।

डॉक्टर सा० की यह आपत्ति न्याय्य नहीं है। द्वितीय अध्याय (प्रकरण ३ एवं ४) में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि उत्तरभारत में तो क्या, सम्पूर्ण भारत में यापनीयसंघ की उत्पत्ति के पूर्व कोई सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा विद्यमान नहीं थी। उसके पूर्व जैनपरम्परा में दो ही संघ थे : एकान्त-अचेलमार्गी-निर्ग्रंथ-(दिगम्बर)-संघ तथा एकान्त-सचेलमार्गी-श्वेतपट-श्रमण-संघ। इस एकान्त-सचेलमार्गी-श्वेतपट-श्रमण-संघ के ही कुछ साधुओं ने यापनीयसंघ की नींव डाली थी। अतः डॉ० सागरमल जी की आपत्ति उचित नहीं है। जिस सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा का अस्तित्व ही नहीं था, उससे श्वेताम्बर और यापनीय संघों की उत्पत्ति मानना आकाशकुसुम से सुगंध की उत्पत्ति मानना है। अतः हरिषेण, देवसेनसूरि तथा रत्ननन्दी इन तीनों का यह कथन अप्रामाणिक नहीं है कि यापनीयसंघ का जन्म श्वेताम्बरसंघ से हुआ था।

५

दिगम्बरसंघ से यापनीयसंघ की उत्पत्ति नहीं

आचार्य हस्तीमल जी यापनीयसंघ की उत्पत्ति दिगम्बरपरम्परा से मानते हुए लिखते हैं—"दर्शनसार की उपरिलिखित ('**कल्लाणं वरणयरे**') गाथा में यापनीयपरम्परा की उत्पत्ति श्वेताम्बरसंघ से बताई गई है, किन्तु यापनीयसंघ के जितने भी गणों, गच्छों अथवा संघों के नाम जो आज तक प्राचीन अभिलेखों (शिलालेखों, ताम्रपत्रों) आदि में उपलब्ध हुए हैं, वे सब के सब दिगम्बरपरम्परा के संघों, गणों, गच्छों एवं अन्वयों के समान नामवाले हैं। इसके विपरीत श्वेताम्बरपरम्परा के किसी भी गण अथवा गच्छ के समान नामवाला यापनीयपरम्परा का एक भी गण अथवा गच्छ आज तक उपलब्ध हुई पुरातत्त्व सामग्री में प्राप्त नहीं हुआ है। --- मूलसंघ, श्रीमूल-मूल-संघ, कनकोत्पल-संभूतसंघ, पुन्नागवृक्षमूलसंघ, कुन्दकुन्दान्वय, कण्डूरगण, क्राणूरगण आदि संघों, गणों और अन्वयों के नाम इन दोनों (यापनीय और दिगम्बर) परम्पराओं में समानरूप से उपलब्ध होते हैं"। (जै. ध. मौ. इ. / भा.३ / पृ.२०३-२०४)।

आचार्य हस्तीमल जी के मत की असमीचीनता

आचार्य हस्तीमल जी का उपर्युक्त कथन समीचीन नहीं है। उनके द्वारा उल्लिखित संघों और गणों में से केवल पुन्नागवृक्षमूलगण, जिसे उन्होंने 'गण' न कहकर 'संघ' कहा है, दिगम्बर और यापनीय संघों में समान था, शेष नहीं। शेष में से श्रीमूल-मूलसंघ, कनकोत्पलसंभूत-संघ और कण्डूरगण केवल यापनीयसंघ में थे और मूलसंघ कुन्दकुन्दान्वय एवं क्राणूरगण केवल दिगम्बरसंघ में। अतः मात्र एक 'पुन्नागवृक्षमूलगण' नाम की समानता इस निर्णय का युक्तियुक्त हेतु नहीं है कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति

दिगम्बरसंघ से हुई थी। समानता को देखा जाय तो यापनीयसंघ की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समानता दिगम्बरसंघ की अपेक्षा श्वेताम्बरसंघ से अधिक है। जैसे छह द्रव्य, सात तत्त्व, अष्टकर्म, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग, वीतराग देवशास्त्र-गुरु एवं अहिंसादि सिद्धान्तों की अधिक समानता के कारण श्वेताम्बरजैन-सम्प्रदाय की उत्पत्ति निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैन) सम्प्रदाय से ही सिद्ध होती है, बौद्धसम्प्रदाय से नहीं, जैसे सिद्धान्त और व्यवहार की अधिक समानता के कारण स्थानकवासी-श्वेताम्बर सम्प्रदाय का उद्भव मूर्तिपूजक श्वेताम्बरसम्प्रदाय से ही सिद्ध होता है, दिगम्बर जैन-सम्प्रदाय से नहीं, वैसे ही सवस्त्रमुक्ति (यापनीयमत में वैकल्पिकरूप से), स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि सिद्धान्तों एवं 'धर्मलाभ' कहकर आशीर्वाद देने आदि-रूप व्यवहार की अत्यन्त समानता के कारण यापनीयसम्प्रदाय का जन्म श्वेताम्बरसम्प्रदाय से ही सिद्ध होता है, दिगम्बरसम्प्रदाय से नहीं। आचार्य हस्तीमल जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि "यापनीयपरम्परा की मान्यताएँ अधिकांश में श्वेताम्बरपरम्परा की मान्यताओं से मिलती जुलती हैं।" (देखिये, प्रस्तुत अध्याय/ प्रकरण १/ शीर्षक १ / अनुच्छेद २)।

नाम और वेश का अनुकरण तो उनसे भी किया जा सकता है, जिनसे कोई वंशगत सम्बन्ध न हो, किन्तु समान भाषा, मान्यताएँ और प्रथाएँ विरासत में उन्हीं से मिलती है, जिनके साथ वंशगत सम्बन्ध होता है।

यह मनोविज्ञान का नियम है कि जब आकृतियाँ और वेश समान हों, तब भाषा और संस्कारों से ही मनुष्य के मूल का निर्णय होता है। यापनीयों की श्वेताम्बरीय मान्यताओं से उनके श्वेताम्बरीय संस्कारों का बोध होता है। और उनके द्वारा आशीर्वाद में बोला जानेवाला 'धर्मलाभ' वचन तथा अपनी पहचान के लिए प्रयुक्त 'यापनीय' नाम श्वेताम्बरों की आगम-भाषा के शब्द हैं। अतः यापनीयों में श्वेताम्बरीय संस्कार और श्वेताम्बरों की भाषा पाये जाने से सिद्ध है कि श्वेताम्बरसंघ ही उनका मूल था। यदि दिगम्बरसंघ उनका मूल होता, तो यापनीय हो जाने पर भी उनके मुँह से आशीर्वाद के रूप में **धर्मवृद्धि** वचन ही निकलता, **धर्मलाभ** नहीं। 'यापनीय' शब्द बौद्धसाहित्य और श्वेताम्बरसाहित्य में ही मिलता है, दिगम्बरसाहित्य में नहीं, इस पर विशेष प्रकाश आगे डाला जायेगा।

६

सिद्धान्तविपरीत वेशग्रहण का प्रयोजन

यापनीयसंघ एक ऐसा संघ था, जिसके साधु अपने सिद्धान्तों के विपरीत लिंग (वेश) धारण करते थे। वे मानते थे कि मुक्ति के लिए नग्न रहना आवश्यक नहीं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है, फिर भी नग्न रहते थे। विचारणीय है कि ऐसा करने का क्या प्रयोजन था? उस प्रयोजन के अन्वेषण से यापनीयों के मूल का निर्णय हो सकता है।

६.१. श्वेताम्बर-दिगम्बरों में सैद्धान्तिक मेल कराना

कुछ विद्वानों का कथन है कि इसका प्रयोजन श्वेताम्बरों और दिगम्बरों में सैद्धान्तिक मेल कराना था। श्वेताम्बर मुनि आचार्य श्री हस्तीमल जी लिखते हैं—

"तीर्थप्रवर्तनकाल से लेकर आचार्य हरिभद्रसूरि के समय तक निर्ग्रन्थ (विषय-कषायों की ग्रन्थियों से विहीन) श्वेताम्बर, एक वस्त्र से लेकर तीन वस्त्र तक धारण करनेवाले, केवल अग्रहार धारण करनेवाले, केवल कटिपट्ट धारण करनेवाले और दिगम्बर (निर्वस्त्र) मुनि भी भगवान् महावीर के श्रमणसंघ में विद्यमान थे।

"इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि अप्रतिहत विहार करते समय अग्रहार अथवा कटिपट्ट धारण करनेवाले मुनि, संघभेद के समय अर्थात् वीर नि० सं० ६०९ में भी विद्यमान थे और उन्होंने भगवान् महावीर के संघ को छिन्न-भिन्न न होने, छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर विघटित न होने देने के सदुद्देश्य से ही श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों के बीच समन्वय बनाये रखने हेतु, इन दोनों सम्प्रदायों के बीच का मध्यमार्ग अपनाया और उनका संघ यापनीयसंघ अथवा आपुलीयसंघ के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुआ।" (जै.ध.मौ.इ. / भा. ३ / पृ. २१०-२११)।

डॉ० सागरमल जी भी लिखते हैं—"भगवान् महावीर की परम्परा का सही रूप में प्रतिनिधित्व करनेवाला तथा वर्तमान श्वेताम्बर एवं दिगम्बर परम्पराओं के मध्य योजक कड़ी के रूप में विकसित यह (यापनीय) सम्प्रदाय मेरी अध्ययनरुचि का विषय तो था ही ---।" (लेखकीय / पृ.V / जै.ध.या.स.)।

इस प्रकार इन महानुभावों का मत है कि केवल अग्रहार (अग्रवस्त्र) या कटि-पट्टधारी श्वेताम्बर मुनियों ने श्वेताम्बरों और दिगम्बरों में एकता स्थापित करने के प्रयोजन से अपने श्वेताम्बरीय सिद्धान्तों को न छोड़ते हुए दिगम्बरवेश अपना लिया था। ये ही लोग यापनीय कहलाये।

आचार्य हस्तीमल जी के उपर्युक्त वचनों से उनके पूर्ववचन बाधित हो जाते हैं, जिनमें उन्होंने कहा है कि यापनीयों के गण-गच्छादि दिगम्बरों के गण-गच्छादि से समानता रखते हैं, इसलिए यापनीयों की उत्पत्ति दिगम्बरों से हुई थी।

६.२. सैद्धान्तिक मेल की कल्पना अयुक्तिसंगत

किन्तु श्वेताम्बर (अग्रहार या कटिपट्टधारी) साधुओं के द्वारा श्वेताम्बर-सिद्धान्त न छोड़ते हुए दिगम्बरवेश अपनाये जाने का प्रयोजन श्वेताम्बरों और दिगम्बरों में सैद्धान्तिक

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिगम्बरसंघ से हुई थी। समानता को देखा जाय तो यापनीयसंघ की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समानता दिगम्बरसंघ की अपेक्षा श्वेताम्बरसंघ से अधिक है। जैसे छह द्रव्य, सात तत्त्व, अष्टकर्म, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग, वीतराग देवशास्त्र-गुरु एवं अहिंसादि सिद्धान्तों की अधिक समानता के कारण श्वेताम्बरजैन-सम्प्रदाय की उत्पत्ति निर्ग्रन्थ (दिगम्बर जैन) सम्प्रदाय से ही सिद्ध होती है, बौद्धसम्प्रदाय से नहीं, जैसे सिद्धान्त और व्यवहार की अधिक समानता के कारण स्थानकवासी-श्वेताम्बर सम्प्रदाय का उद्भव मूर्तिपूजक श्वेताम्बरसम्प्रदाय से ही सिद्ध होता है, दिगम्बर जैन-सम्प्रदाय से नहीं, वैसे ही सवस्त्रमुक्ति (यापनीयमत में वैकल्पिकरूप से), स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि सिद्धान्तों एवं 'धर्मलाभ' कहकर आशीर्वाद देने आदि-रूप व्यवहार की अत्यन्त समानता के कारण यापनीयसम्प्रदाय का जन्म श्वेताम्बरसम्प्रदाय से ही सिद्ध होता है, दिगम्बरसम्प्रदाय से नहीं। आचार्य हस्तीमल जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि "यापनीयपरम्परा की मान्यताएँ अधिकांश में श्वेताम्बरपरम्परा की मान्यताओं से मिलती जुलती हैं।" (देखिये, प्रस्तुत अध्याय/ प्रकरण १/ शीर्षक १ / अनुच्छेद २)।

नाम और वेश का अनुकरण तो उनसे भी किया जा सकता है, जिनसे कोई वंशगत सम्बन्ध न हो, किन्तु समान भाषा, मान्यताएँ और प्रथाएँ विरासत में उन्हीं से मिलती है, जिनके साथ वंशगत सम्बन्ध होता है।

यह मनोविज्ञान का नियम है कि जब आकृतियाँ और वेश समान हों, तब भाषा और संस्कारों से ही मनुष्य के मूल का निर्णय होता है। यापनीयों की श्वेताम्बरीय मान्यताओं से उनके श्वेताम्बरीय संस्कारों का बोध होता है। और उनके द्वारा आशीर्वाद में बोला जानेवाला 'धर्मलाभ' वचन तथा अपनी पहचान के लिए प्रयुक्त 'यापनीय' नाम श्वेताम्बरों की आगम-भाषा के शब्द हैं। अतः यापनीयों में श्वेताम्बरीय संस्कार और श्वेताम्बरों की भाषा पाये जाने से सिद्ध है कि श्वेताम्बरसंघ ही उनका मूल था। यदि दिगम्बरसंघ उनका मूल होता, तो यापनीय हो जाने पर भी उनके मुँह से आशीर्वाद के रूप में **धर्मवृद्धि** वचन ही निकलता, **धर्मलाभ** नहीं। 'यापनीय' शब्द बौद्धसाहित्य और श्वेताम्बरसाहित्य में ही मिलता है, दिगम्बरसाहित्य में नहीं, इस पर विशेष प्रकाश आगे डाला जायेगा।

६

सिद्धान्तविपरीत वेशग्रहण का प्रयोजन

यापनीयसंघ एक ऐसा संघ था, जिसके साधु अपने सिद्धान्तों के विपरीत लिंग (वेश) धारण करते थे। वे मानते थे कि मुक्ति के लिए नग्न रहना आवश्यक नहीं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मेल कराना था, यह धारणा बुद्धिगम्य नहीं है। क्योंकि एकान्ततः अचेललिंग से मोक्ष की प्राप्ति माननेवाले निर्ग्रन्थसंघ में सचेललिंग से भी मोक्षप्राप्ति माननेवाली विचारधारा के जन्म ने ही निर्ग्रन्थसंघ का विभाजन किया था। तब निर्ग्रन्थसंघ में उसी विचारधारा के पुनः प्रवेश से सैद्धान्तिक समन्वय की कल्पना करना यापनीयसंघ के प्रवर्तकों को शिशुओं से भी अधिक भोला सिद्ध करना है।

दिगम्बरवेश और श्वेताम्बर-सिद्धान्तों के संगम से उद्भूत 'यापनीय' नाम का यह वर्णसंकर दर्शन दिगम्बर-श्वेताम्बर-आगमविरुद्ध, दिगम्बर-श्वेताम्बर-श्रद्धाविरुद्ध, अन्तर्विरोधी और अतर्कसंगत था। इसकी सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिक-मुक्ति और केवलिभुक्ति की मान्यताएँ दिगम्बरागमों और दिगम्बरों की श्रद्धा के प्रतिकूल थीं। तथा एकान्त-अचेलमुक्ति, एकान्त-पुरुषमुक्ति, पाणितलभोजित्व एवं मयूरपिच्छिग्रहण की मान्यताएँ श्वेताम्बरागमों एवं श्वेताम्बरों की श्रद्धा के विरुद्ध थीं। अचेलमुक्ति को मान्यता देकर चेल के परिग्रह होने एवं संयमविरोधी होने का तर्क भी स्वीकार कर लिया गया था और सचेलमुक्ति का निषेध न कर चेल के संयमोपकारी होने का तर्क भी उचित ठहरा दिया गया था। इस तरह यापनीयदर्शन अन्तर्विरोधों से भरा हुआ था। एक ओर सचेलमुक्ति मान लेने से दिगम्बरवेश केवल आत्मक्लेश और निर्लज्जता का कारण सिद्ध होकर रह जाता है, दूसरी ओर अचेलमुक्ति को भी स्वीकार कर लेने से वस्त्र के संयमोपकरण होने की श्वेताम्बरीय मान्यता धराशायी हो जाती है। इस प्रकार यापनीयमत अतर्कसंगत मान्यताओं का समुच्चय था। यह यापनीयों के लिए भले ही दुग्ध के समान गुणकारी रहा हो, किन्तु श्वेताम्बरों के लिए दुग्ध-विष का संगम था और दिगम्बरों के लिए विषमय कनकघट।

यापनीयों को स्वयं यह भ्रम नहीं रहा होगा कि उनकी इन उभयागम-विरुद्ध उभयश्रद्धा-विरुद्ध, अन्तर्विरोधी एवं अतर्कसंगत, वर्णसंकर मान्यताओं से प्रभावित होकर दिगम्बर और श्वेताम्बर अपनी मान्यताएँ छोड़ देंगे और यापनीयमत स्वीकार कर लेंगे।

ये मान्यताएँ इतनी अतर्कसंगत थीं कि इनके वाहक यापनीय-सम्प्रदाय की अकालमृत्यु हो गयी और केवल निरपवाद-अचेलमार्गी मूल-दिगम्बरपरम्परा तथा निर-पवादसचेलमार्गी श्वेताम्बरपरम्परा जीवित रह सकीं। इसका कारण यह है कि ये दोनों परम्पराएँ अपने-अपने सिद्धान्तों की दृष्टि से तर्कसंगत प्रतीत होती हैं। दिगम्बरपरम्परा में वस्त्रपरिग्रह को निरपवादरूप से मोक्ष में बाधक माना गया है, इसलिए इसमें किसी भी वस्त्रधारी को चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, मोक्ष के लिए स्थान नहीं है। यह सिद्धान्त

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

युक्तिसंगत है। इसकी युक्तिमत्ता श्वेताम्बराचार्यों ने भी स्वीकार की है।[५] इसी प्रकार निरपवाद-सचेलमार्गी श्वेताम्बरपरम्परा में नग्नत्व को असंयम का कारण और वस्त्रग्रहण को संयम का उपकरण मान लिया गया है, इसलिए उसमें नग्नत्व के लिए अपवादरूप से भी अवकाश नहीं है। अतः इस मान्यता के अनुसार उसमें स्त्रीमुक्ति भी युक्तिमत् सिद्ध हो जाती है। किन्तु यापनीयमत में वस्त्रपरिग्रह को मुक्ति में बाधक नहीं माना गया है, इसलिए उसके अनुसार वस्त्रधारी साधु भी मुक्त हो सकते हैं, गृहस्थ भी, परतीर्थिक भी और स्त्री भी। इसके बावजूद उसमें नग्नत्व को स्वीकार किया गया है। यापनीय साधु नग्न रहने और अपने को पाणितलभोजी कहने में गौरव का अनुभव करते थे। अब यह बात समझ में नहीं आती कि जब वस्त्रपरिग्रह मोक्ष में बाधक नहीं है और कोई भी मनुष्य, चाहे वह स्वतीर्थिक हो या परतीर्थिक, स्त्री हो या पुरुष, वस्त्रधारण करते हुए भी मुक्त हो सकता है, तब नग्न रहने का क्या औचित्य है? इस प्रश्न का यापनीयग्रन्थों में कोई समाधान नहीं है और न इसका समाधान करनेवाली कोई युक्ति दृष्टिगोचर होती है। अतः यह अत्यन्त अयुक्तियुक्त सिद्धान्त है। एक ओर नग्नता को असंयम का कारण तथा वस्त्रपरिग्रह को संयम का उपकरण माननेवाले श्वेताम्बरों को यापनीयों का नाग्न्य-सिद्धान्त उचित प्रतीत नहीं हो सकता था, दूसरी ओर एकमात्र नाग्न्य को ही मोक्ष का मार्ग माननेवाले दिगम्बरों को आपवादिक या वैकल्पिक सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति तथा परतीर्थिकमुक्ति मान्य नहीं हो सकती थी। यह मोटी बात यापनीयों की बुद्धि में न उतरी होगी, इतना तो मूढ़ उन्हें नहीं माना जा सकता। अतः यापनीयों को स्वयं यह भ्रम नहीं रहा होगा कि उनकी मान्यताओं के प्रति दिगम्बरों और श्वेताम्बरों दोनों में आस्था पैदा हो जायेगी और वे यापनीयमत अंगीकार कर लेंगे। अतः यह मानना कि यह मत दिगम्बरों और श्वेताम्बरों में मेल कराने के लिये उत्पन्न हुआ था, बहुत बड़ा धोखा खाना है और दूसरों को धोखे में डालना है।

६.३. लोकमान्यता-राजमान्यता की प्राप्ति

अब यह जिज्ञासा और बलवती हो जाती है कि जो श्वेताम्बरसाधु जम्बूस्वामी के बाद से ही एकमात्र सचेलता को मोक्ष का मार्ग मानते आ रहे हों और उस पर अनन्य आस्था से चल रहें हों तथा उस पर चलते हुए जिन्हें मोक्षप्राप्ति में कोई सन्देह

---

५. "अथ यदा शिवभूतिना नग्नभावोऽभ्युपगतस्तदानीमुत्तरानाम्न्याः स्वभगिन्या वस्त्रपरिधानमनुज्ञातम्। एवं च सति यदि स्त्रीणां मुक्तिं प्ररूपयति तदा सवस्त्र-निर्वस्त्रयोरविशेषापत्त्या स्वकीयनग्नभावस्य केवलं क्लेशतैवापद्येतेति विचिन्त्य स्त्रीणां मुक्तिर्निषिद्धा।" प्रवचनपरीक्षा/वृत्ति १/२/१८/पृ. ८२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उत्पन्न न हुआ हो, उनमें से कुछ साधु अचानक दिगम्बरों के द्रव्यलिङ्ग को अर्थात् नग्नत्व, मयूरपिच्छी और पाणितलभोजित्व को अपना लें, इसका क्या रहस्य है? इस रहस्य का उद्घाटन रत्ननन्दीकृत 'भद्रबाहुचरित' के कथानक से होता है। कथानक का वर्णन षष्ठ अध्याय में किया जा चुका है। उसका सार यह है कि दक्षिण में पहुँचे हुए कुछ श्वेताम्बर साधुओं ने आहारादि की सुविधा प्राप्त करने के लिए दिगम्बर साधुओं का द्रव्यलिङ्ग अपनाया लिया था, किन्तु अपने सिद्धान्तों में उन्होंने कोई परिवर्तन नहीं किया। सिद्धान्तों से वे श्वेताम्बर ही बने रहे। ये ही साधु यापनीय नाम से प्रसिद्ध हुए। माननीय डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने भी यही मत व्यक्त किया है। रत्ननन्दी की उपर्युक्त यापनीयसंघोत्पत्तिकथा पर टिप्पणी करते हुए वे लिखते हैं—"ऐसा प्रतीत होता है कि रानी नृकुलदेवी श्वेताम्बर-विचारधारा की रही हों और उन दिनों दक्षिणभारत में श्वेताम्बर साधुओं को विशेष आदर एवं प्रसिद्धि नहीं प्राप्त थी, क्योंकि यदि इस करहाटक को आधुनिक महाराष्ट्र के सतारा जिला स्थित 'कहडि' नामक स्थान माना जाता है, तो निश्चय ही दक्षिण भारत में श्वेताम्बर साधुओं की विशेष मान्यता न थी। आचार्य देवसेन और रत्ननन्दी के उपर्युक्त विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि यापनीयसंघ श्वेताम्बरों के वर्गभेद के रूप में उद्भूत हुआ, भले ही ऊपर से उनका बाह्य परिवेश दिगम्बर साधुओं जैसा रहा हो।"[६]

निश्चय ही रत्ननन्दी-कृत कथा सत्य का उद्घाटन करती है। दक्षिणभारत की तत्कालीन परिस्थिति से इसका समर्थन होता है। परिस्थिति यह थी कि दक्षिण में दिगम्बर-परम्परा श्रुतकेवली भद्रबाहु के पहुँचने के पूर्व से ही फल-फूल रही थी। दिगम्बर साधुओं ने अपने नग्नवेश से ज्ञापित निःस्पृहवृत्ति और सम्यक् संयम-तप-परीषहजय से काफी लोकप्रियता और राजमान्यता हासिल कर ली थी। इसलिए वे अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। दक्षिणवासियों ने साधुत्व की पराकाष्ठा का अनुभव कर लिया था। अतः साधुत्व का उससे किंचित् भी न्यून स्तर उनके लिए श्रद्धास्पद नहीं हो सकता था। फलस्वरूप जब श्वेताम्बर साधु दक्षिण पहुँचे, तब उनके सवस्त्ररूप को देखकर राजा-प्रजा में उनके प्रति आदरभाव उत्पन्न नहीं हुआ, न उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हुई, न राजमान्यता, भिक्षा की प्राप्ति भी दुष्कर प्रतीत होने लगी, जिससे उनका वहाँ टिकना असंभव सा हो गया। इसी के फलस्वरूप प्रथम बार दक्षिण पहुँचे श्वेताम्बर साधुओं ने व्यावहारिकता से काम लिया। उन्होंने वेश तो दिगम्बर साधुओं का धारण कर लिया, किन्तु मन से श्वेताम्बर ही बने रहे। पर, इससे वे न तो श्वेताम्बरों के लिए स्वीकार्य हो सकते थे, न दिगम्बरों के लिए। फलस्वरूप उन्हें एक तीसरा नया सम्प्रदाय बनाना पड़ा, जो 'यापनीय' कहलाया।

---

६. 'जैन सम्प्रदाय के यापनीयसंघ पर कुछ और प्रकाश'/ अँगरेजी मूलपाठ के अनुवादक : श्री कुन्दनलाल जैन / 'अनेकान्त'/ महावीर निर्वाण विशेषांक / सन् १९७५ / पृ.२४६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुनि कल्याणविजय जी ने स्वीकार किया है कि दक्षिण भारत में नग्न साधु बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। यह उनके निम्नलिखित वक्तव्य से ज्ञात होता है—

"यद्यपि शिवभूति के सम्प्रदाय का उद्भव उत्तरापथ में हुआ था, पर वहाँ उसका अधिक प्रचार नहीं हो सका। कारण स्पष्ट है। प्राचीन स्थविरसंघ का उन दिनों वहाँ पूर्ण प्राबल्य फैला हुआ था और मथुरा के आस-पास के ९६ गाँवों में तो जैनधर्म राजधर्म के रूप में माना जाता था। इस स्थिति में शिवभूति या उनके अनुयायियों का वहाँ टिकना बहुत कठिन था। इस कठिनाई के कारण उस सम्प्रदाय ने उधर से हटकर दक्षिणापथ की तरफ प्रयाण किया, जहाँ आजीविक सम्प्रदाय के प्रचार के कारण पहले ही नग्न साधुओं की तरफ जनसाधारण का सद्भाव था। वहाँ जाने पर इस सम्प्रदाय की भी अच्छी कदर हुई और धीरे-धीरे वह पगभर हो गया।" (श्र.भ.म./पृ.३००)।

अन्यत्र भी मुनि जी ने लिखा है—"कुन्दकुन्दाचार्य आदि के इन नये सिद्धान्तों से इस परम्परा को कुछ लाभ हुआ और कुछ हानि भी। लाभ यह हुआ कि ऐसी ऐकान्तिक अचेलकवृत्ति से दक्षिण देश में, जहाँ पहले से ही आजीविक आदि नग्न-सम्प्रदायवालों का मान और प्रचार था, इनके अनुयायी गृहस्थों की संख्या काफी बढ़ गई और इस कारण साधुसमुदाय में भी वृद्धि हुई।" (श्र. भ. म./ पृ.३०६)।

यद्यपि मुनिजी ने यापनीय-सम्प्रदाय के उदय के पूर्व दक्षिण में आजीविक-सम्प्रदाय के नग्नमुनियों का अस्तित्व बतलाया है, किन्तु दिगम्बर-सम्प्रदाय के साधु वहाँ ईसापूर्व चौथी शताब्दी में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के दक्षिण में विहार करने से पूर्व विद्यमान थे और भद्रबाहु के वहाँ पहुँचने पर तो उनकी संख्या और बढ़ गई। इतिहास इसका गवाह है और डॉ० सागरमल जी ने भी इसे स्वीकार किया है। पर मुनि जी यह सिद्ध करना चाहते हैं कि दिगम्बर-सम्प्रदाय यापनीय-सम्प्रदाय के बाद विक्रम की छठी शताब्दी में उत्पन्न हुआ था, इसलिए उन्होंने जानबूझकर दक्षिण में उसके पूर्व दिगम्बर-सम्प्रदाय के नग्न मुनियों का अस्तित्व न बतलाकर आजीविक-सम्प्रदाय के नग्नमुनियों का अस्तित्व बतलाया है। फिर भी उनके कथन से इस बात की पुष्टि तो होती ही है कि दक्षिणभारत में नग्नमुनि बड़े आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। इसलिए दक्षिण में पहुँचे श्वेताम्बर मुनियों को वहाँ लोकमान्यता और राजमान्यता प्राप्त नहीं हुई। इसी कारण उसे पाने के लिए उन्होंने भीतर से श्वेताम्बर रहते हुए भी बाहर से दिगम्बरमुनियों का वेश धारण कर लिया।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस सम्प्रदाय की जिन प्रवृत्तियों का उल्लेख डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने किया है, उनसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि यापनीय-सम्प्रदाय का उदय जीवनयापन को सुविधामय बनाने के उद्देश्य से ही हुआ था। वे लिखते हैं—

"कर्नाटक के उत्तरभाग में यापनीयों का जोर था, जो मुख्यतया मन्दिरों और संस्थाओं से सम्बन्धित रहते थे (और इनमें नेमिनाथ और पार्श्वनाथ की ही प्रतिमाओं के प्रति अधिक आग्रह रहता था)। विशेष महत्त्व की बात यह दिखाई देती है कि यापनीय साधु मन्दिरों के प्रबन्ध-व्यवस्थापक या संघों के भरण-पोषण कर्त्ता के ही रूप में विशेषतया दिखाई देते हैं, जो प्राय: राजाओं या समाज के अन्य विशिष्टवर्ग के व्यक्तियों से अनुदान में भूमि, बाग आदि प्राप्त किया करते थे। इनकी कार्य-पद्धतियाँ अपने क्षेत्र में थोड़ी-बहुत आधुनिक भट्टारकों की भाँति प्रचलित थीं।--- उपर्युक्त विवरणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यापनीयसंघ का जनसामान्य पर कोई विशेष प्रभाव न था। उसका सम्बन्ध तो कुछ विशिष्ट वंशों या व्यक्तियों तक ही सीमित था, जिनकी इस संघ के साधुओं या आचार्यों पर विशिष्ट श्रद्धा-भक्ति थी।"[७]

यापनीयसंघ का उल्लेख करनेवाला अभिलेख सन् ४७५-४९० ई० के कदम्बवंशीय राजा मृगेशवर्मन् का है। इसमें यापनीयों, निर्ग्रन्थों और कूर्चकों का उल्लेख है। दूसरा अभिलेख ४९७-५३७ ई० का है, जिसमें कहा गया है कि मृगेशवर्मन् के पुत्र ने यापनीय साधुओं को कुछ ग्राम अनुदान में दिये थे, जिनकी आमदनी से पूजा-प्रतिष्ठा के अनुष्ठान किये जाते थे और यापनीयसाधुओं का चार माह तक भरण-पोषण किया जाता था।[८] इन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि प्राय: अपने उत्पत्तिकाल से ही यापनीयसाधु जीवनयापन के लिए राजाओं के दान पर आश्रित थे।

उक्त अभिलेखों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर डॉ० सागरमल जी भी लिखते हैं—"इससे यह फलित होता है कि इस काल तक यापनीयसंघ के मुनियों के आहार के लिए कोई स्वतन्त्र व्यवस्था होने लगी थी और भिक्षावृत्ति गौण हो रही थी, अन्यथा उनके भरण-पोषण हेतु दान दिये जाने के उल्लेख नहीं होते।" (जै.ध.या.स./पृ.२७)

ई० सन् ८१२ के राष्ट्रकूट-राजा प्रभूतवर्ष के अभिलेख (क्र. १२४/जै.शि.सं./मा.च./भा.२) से ज्ञात होता है कि यापनीय आचार्य अर्ककीर्ति ने शनि के दुष्प्रभाव से ग्रसित कुनुन्गिल देश के शासक विमलादित्य का उपचार किया था। इस पर टिप्पणी करते हुए डॉ० सागरमल जी कहते हैं—"ईसा की नवीं शताब्दी के प्रारंभ में यापनीय

---

७. वही / 'अनेकान्त'/ महावीर निर्वाण विशेषांक सन् १९७५ / पृ. २५१।

८. वही / पृष्ठ २४७ / सम्बन्धित अभिलेख क्र. ९९ एवं १००/ जै.शि.सं./मा.च./भा.२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आचार्य न केवल मठाधीश बन गये थे, अपितु वे वैद्यक और यन्त्र-मन्त्र आदि का कार्य भी करने लगे थे।" (जै.ध.या.स. / पृ. २८)।

इन अभिलेखों से आचार्य रत्ननन्दी का यह कथन विश्वसनीय प्रतीत होता है कि यापनीय-सम्प्रदाय की स्थापना करनेवाले श्वेताम्बरसाधुओं ने जीवन-यापन की सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ही दिगम्बरवेश धारण किया था। दिगम्बरलिंग उनके लिए वैद्यक और तन्त्र-मन्त्र के समान उदरपोषण-मात्र का साधन था। दार्शनिक दृष्टि से वे पूर्ण श्वेताम्बर थे। इस तरह सवस्त्रमुक्ति मानते हुए भी दिगम्बरवेश धारण करने का यापनीय-सिद्धान्त दार्शनिक दृष्टि से तो युक्तिसंगत सिद्ध नहीं होता, मात्र उदरपोषण की व्यावहारिक दृष्टि ही उसे युक्तिसंगत बनाती है।

यहाँ प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या यह नहीं हो सकता था कि दिगम्बर साधुओं ने ही लोकमान्यता और राजमान्यता की प्राप्ति के लिए श्वेताम्बरसिद्धान्त अपनाकर यापनीयसंघ की स्थापना की हो? उत्तर यह है कि ऐसा नहीं हो सकता था, क्योंकि दिगम्बरसाधुओं को अपने नग्नवेश के कारण वैसे ही सर्वाधिक लोकमान्यता और राजमान्यता प्राप्त थी। इसके अतिरिक्त यदि दक्षिण में श्वेताम्बर-सिद्धान्तों का राजा-प्रजा पर प्रभाव होता, तो यापनीयों को श्वेताम्बरवेश त्यागकर दिगम्बरवेश धारण करने की जरूरत न पड़ती।

७

'यापनीय' नाम श्वेताम्बरसाहित्य से गृहीत

'यापनीय' शब्द के अर्थ से भी इस बात की पुष्टि होती है कि सवस्त्रमुक्ति मानते हुए भी यापनीयों ने जो नग्नवेश अपनाया था, उसका उद्देश्य परिस्थितियों से समझौता करना था। **यापनीय** शब्द का विशेष अर्थ में प्रयोग केवल बौद्धसाहित्य और श्वेताम्बरसाहित्य में मिलता है, दिगम्बरसाहित्य में नहीं। दिगम्बरसाहित्य में यापनीयसंघ का उल्लेख मात्र मिलता है।

बौद्धसाहित्य में 'यापनीय' शब्द का अर्थ है 'सुखमय स्थिति', 'जीने योग्य स्थिति', 'अनुकूल स्थिति' या 'निर्बाध स्थिति।' विनयपिटक के **महावग्गपालि** में कहा गया है—

"**एकमन्तं निसिन्नं खो आयस्मन्तं भगुं भगवा एतदवोच-कच्चि भिक्खु खमनीयं, कच्चि यापनीयं, कच्चि पिण्डकेन न किलमसी ति? खमनीयं भगवा, यापनीयं भगवा, न चाहं भन्ते पिण्डकेन किलमामी ति।**" (बालकलोणक-गमन-कथा / कोसम्बक्कखन्धक। महावग्गपालि / पृ.५८४)।